इग्नू
जन–जन का
विश्वविद्यालय

इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ

BHIC-112
भारत का इतिहास-VII
(*c.* 1605-1750)

THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इग्नू
जन-जन का
विश्वविद्यालय

BHIC - 112

भारत का इतिहास-VII

(*c.*1605-1750)

सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

विशेषज्ञ समिति

प्रो. स्वराज बासु
निदेशक, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. आभा सिंह
इतिहास संकाय
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ
इग्नू, नई दिल्ली

प्रो. फरहत हसन
इतिहास विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली

डॉ. मयंक कुमार
इतिहास विभाग सत्यवती कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. ए. आर. खान (*संयोजक*)
सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ,
इग्नू, नई दिल्ली

डॉ. सैय्यद नजफ़ हैदर
सेंटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. पायस मालेकन्दाथिल
सेंटन फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

प्रो. आर. पी. बहुगुणा
इतिहास एवं संस्कृति विभाग
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली

डॉ. तनूजा कोठियाल
इतिहास विभाग,
स्कूल ऑफ लिबरल स्टडीज
अम्बेडकर विश्वविद्यालय
दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक

डॉ. मयंक कुमार

पाठ्यक्रम समूह

प्रो. आभा सिंह डॉ. मयंक कुमार

पाठ्यक्रम निर्माण दल

इकाई संख्या	पाठ्यक्रम लेखक	अनुवादक
1.	डॉ. प्रतीक, मोतीलाल नेहरु कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।	श्रीमती अनिता चौधरी
2	डॉ. पंकज झा, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।	श्रीमती अनिता चौधरी
3	डॉ. मयंक कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	डॉ. ऋचा सिंह
4	प्रो. एस. इनायत अली जैदी, इतिहास और संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली।	डॉ. ऋचा सिंह
5	डॉ. योगेश स्नेही, स्कूल ऑफ लिबरल स्टडीज, अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली।	श्री भुवन जोशी
6	प्रो. सुरेन्द्र गोपाल, इतिहास विभाग, पटना यूनिवर्सिटी, पटना।	**वर्तमान इकाई इग्नू पाठ्यक्रम ईएचआई–04 भारत 16वीं से मध्य 18वीं शताब्दी तक से ली गई है, खंड 6, इकाई 22।**
7	डॉ. दिव्या सेठी, सेंटर फॉर हिस्टॉरिकल स्टडीज़, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली	श्री भुवन जोशी
8	डॉ. सोहिनी बसाक, ऐतिहासिक अध्ययन केन्द्र, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	श्रीमती अनिता चौधरी
9	प्रो. ए. आर. खान, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	**वर्तमान इकाई इग्नू पाठ्यक्रम ईएचआई–04 भारत 16वीं से मध्य 18वीं शताब्दी तक से ली गई है, खंड 6, इकाई 24।**
10	प्रो. एस. एम. अजीजुद्दीन हुसैन, इतिहास और संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली, औरडॉ. मयंक कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	श्रीमती अनिता चौधरी

इकाई संख्या	पाठ्यक्रम लेखक	अनुवादक
11	प्रो. आर. पी. बहुगुणा, इतिहास और संस्कृति विभाग, जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली।	श्रीमती अनिता चौधरी
12	डॉ. मयंक कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	श्रीमती अनिता चौधरी
13	प्रो. रवीन्द्र कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	श्री भुवन जोशी
14	प्रो. रवीन्द्र कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	**वर्तमान इकाई इग्नू पाठ्यक्रम ईएचआई–04 भारत 16वीं से मध्य 18वीं शताब्दी तक से ली गई है, खंड 8, इकाई 34।**
15	डॉ. शैलका मिश्रा, डायरेक्टर, जगदीश एंड कमला मित्तल, म्यूजियम ऑफ इंडियन आर्ट, हैदराबाद	श्री भुवन जोशी
16	डॉ. प्रसुन चटर्जी, डिप्टी हेड ऑफ पब्लिकेषन्स, प्राइमस बुक्स, दिल्ली।	श्रीमती अनिता चौधरी
17	डॉ. अनुभूति मौर्या, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, शिवनडार विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोयडा, यू. पी.।	श्रीमती अनिता चौधरी
18	प्रो. सीमा अल्वी, इतिहास विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, और डॉ. मयंक कुमार, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।	**वर्तमान इकाई इग्नू पाठ्यक्रम ईएचआई–04 भारत 16वीं से मध्य 18वीं शताब्दी तक से ली गई है, खंड 9, इकाई 35।**

हिन्दी संयोजक : डॉ. मयंक कुमार

हिन्दी पुनरीक्षण : रितु छाबड़ा, मयंक कुमार

आवरण सज्जा साभार

कवर पेज निम्नलिखित का समुच्चित चित्र हैः भागवत पुराण का एक पृष्ठ, पंचतंत्र की 18वीं शताब्दी की पांडुलिपि और मुहम्मद जुकी की शाहनामा। स्रोत उपस्थिति के क्रम में हैं :

https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Rajasthan_manuscript_page_of_Bhagavata_Purana.jpg

https://commons.wikimedia.org/wiki/
File:18th_century_Panchatantra_manuscript_page,_The_Birds_Try_to_Beat_Down_the_Ocean.jpg

Muhammad Juki's Shahnamah (A Prince's Manuscript Unbound, Asia Society Exhibition Feb-9 May-1, 2011. http://sites.asiasociety.org/bookofkings/a-closer-look/mughal-emperors/

सामग्री निर्माण

श्री तिलक राज
सहायक कुलसचिव,
एम.पी.डी.डी. इग्नू, नई दिल्ली

आवरण सज्जा

राकेश कुमार,
आर. के. इंटरप्राईसज, ग्राफिक डिज़ाइनर
नई दिल्ली

मार्च, 2022

© इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, 2022

ISBN : 978-93-5568-255-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस कार्य का कोई भी अंश इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति के बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रमों के विषय में और अधिक जानकारी विश्वविद्यालय के कार्यालय, मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110 068 से प्राप्त की जा सकती है।

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की ओर से कुलसचिव, सां. नि. एवं वि. प्रभाग द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

लेजर टाइप सेटिंग : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20–अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

मुद्रक : आकाशदीप प्रिंटर्स, 20–अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

पाठ्यक्रम विवरण

		पृष्ठ
पाठ्यक्रम परिचय		**7**
खंड 1	**स्रोत और साहित्यिक परंपराएँ**	**11**
इकाई 1	फारसी इतिहास और संस्मरण	13
इकाई 2	संस्कृत काव्य साहित्य, क्षेत्रीय स्रोत और यात्रा वृत्तांत	26
खंड 2	**राजनैतिक प्रक्रियाएं**	**47**
इकाई 3	दक्कन में राजनैतिक गतिविधियां और मराठों का उद्‌य	49
इकाई 4	राजपूतः संघर्ष और सहयोग	67
इकाई 5	सिख शक्ति का उदय	86
खंड 3	**उत्पादन और वाणिज्यिक प्रथाएँ**	**101**
इकाई 6	शिल्प उत्पादन, विनिर्माण और कारीगर समूह	103
इकाई 7	आंतरिक व्यापार	116
इकाई 8	हिन्द महासागर व्यापारिक संजाल	133
इकाई 9	व्यापारी समुदाय और वाणिज्यिक पद्धतियां	149
खंड 4	**राज्य, समाज और धर्म**	**163**
इकाई 10	धार्मिक विचार और आन्दोलन-I	165
इकाई 11	धार्मिक विचार और आन्दोलन-II	175
इकाई 12	राज्य, धर्म और समाज	190
खंड 5	**दृश्य संस्कृति**	**203**
इकाई 13	वास्तुशिल्प	205
इकाई 14	चित्रकला और ललित कलाएं	238
इकाई 15	चित्रकलाः विविध परंपराएँ	253
खंड 6	**समाज और संस्कृति**	**287**
इकाई 16	दरबारी संस्कृति	289
इकाई 17	महिलाएं और जेंडर	301
खंड 7	**अठारहवीं शताब्दी**	**313**
इकाई 18	मुगल पतन और विघटन	315

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

पाठ्यक्रम अध्ययन संबंधी दिशा–निर्देश

इस पाठ्यक्रम में हमने अध्ययन सामग्री के प्रस्तुतिकरण का समरूप पैटर्न अपनाया है। यह पाठ्यक्रम परिचय से प्रारम्भ होता है, जिसमें कालक्रमानुसार विकास के महत्वपूर्ण चरणों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें 7 विशिष्ट खंड हैं जिन्हें 18 इकाइयों में बांटा गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए इकाइयों की संरचना एक समान रखी गई है। इकाई के प्रथम भाग, उद्देश्य का प्रयोजन आपको इकाई के अध्ययन से संबंधित विशिष्ट मुद्दों से अवगत कराना है। कृपया इन उद्देश्यों को ध्यान से पढ़िए और प्रत्येक इकाई के भाग को पढ़ने के बाद खुद पुनः उस पर चिन्तन कीजिए। इकाई की प्रस्तावना आपको इकाई की विषय–वस्तु से परिचित कराती है तथा आपको इकाई की विषय–वस्तु के संबंध में दिशा–निर्देश देती है। तत्पश्चात् पाठ्यक्रम की सुगमता के लिए विभिन्न भागों तथा उपभागों में मुख्य विषय की चर्चा की गई है। इकाई के बीच में बोध प्रश्न दिए गए हैं। हमारा निवेदन है कि आप जब भी इन प्रश्नों तक पहुँचें, इन्हें अवश्य पढ़ें तथा हल करें। यह न केवल आपको, आपके स्वयं अध्ययन के मूल्यांकन में सहायक होगा, बल्कि इससे आप यह भी जांच सकेंगे कि आपने विषय विशेष को कितना समझा। अपने उत्तर की जांच आप सारांश के बाद दिए गए उत्तर संबंधित मुख्य बिंदुओं से कीजिए। इकाई के अंत में शब्दावली प्रदान की गई है। इकाई के अंत में संदर्भ ग्रंथ सूची भी प्रदान की गई है। इस सूची में उन स्रोतों तथा ग्रंथों की चर्चा की गई है, जो आपके अध्ययन के लिए उपयोगी हैं अथवा अध्ययन सामग्री के निर्माण के दौरान प्रयुक्त की गयी है। आप उन पर अवश्य नज़र डालें। हमने कुछ शैक्षणिक वीडियो अध्ययन समझ को बढ़ाने के लिए दिए हैं। कृपया आप इन वीडियो को देखें, यह आपकी संबंधित विषय–वस्तु की व्यापक समझ को बढ़ाने में सहायक होगा।

पाठ्यक्रम परिचय

वर्तमान पाठ्यक्रम सत्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के मध्य की गतिविधियों पर केन्द्रित है। यह कई मायनों में संक्रमण की अवधि हैं, मुगल साम्राज्य इसमें अपनी चरम् सीमा पर पहुंच गया था, लेकिन इस अवधि के दौरान उसका पतन भी देखा जा सकता है। यह अवधि ऐतिहासिक प्रलेखनीकरण में बहुत समृद्ध है। विभिन्न प्रकार के लेखन के साथ; फारसी में दरबारी इतिवृत्त, अखबारात्, अखलाख साहित्य, तजकिरा आदि और देसी भाषा के साहित्य में बहुत सी ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों और कई तरह के पत्राचारों द्वारा बनाए गए फैक्ट्री रिकॉर्ड और यात्रा वृत्तांतों को भी नहीं भूलना चाहिए। क्षेत्रीय अभिलेखागार; राजस्थान अभिलेखागार, बीकानेर, आन्ध्रप्रदेश अभिलेखागार, हैदराबाद, रजा पुस्तकालय रामपुर, भंडारकर ओरियन्अल रिसर्च इंस्टीटूयट, दस्तावेजों का एक बहुत ही विविध संग्रह प्रदान करता है।

दस्तावेजीकरण के इस तरह के एक विविध संकलन के परिणामस्वरूप अर्थव्यवस्था, समाज, राज्य–व्यवस्था, परिस्थितिकी, संस्कृति, धर्मों, सम्प्रदायों आदि के विभिन्न आयामों से संबंधित एक बहुत समृद्ध इतिहास लेखन हुआ है। मुगल साम्राज्य, विभिन्न क्षेत्रों पर रचनाओं के साथ–साथ हमारे पास भारतीय समाज के नये आयामों को उजागर करने वाली बहुत अच्छी किस्म की ऐतिहासिक रचनाऐं अब उपलब्ध हैं। सामाजिक संबंधों की बारीकियों, सांस्कृतिक प्रथाओं, साहित्यिक परंपराओं, वैधता के आयामों, क्षेत्रीय पुनरूत्थान, संरक्षण की राजनीति, जलवायु के महत्व और प्ररिक्षित संदर्भ ने इतिहासकारों का ध्यान आकर्षित किया है। दरबारी संस्कृति, महिलाओं और जेन्डर–भेद से संबंधित आकर्षक विवरण उपलब्ध हैं।

यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की लगातार बढ़ती उपस्थिति और वर्चस्व के साथ भारतीय व्यापारी भी उपमहाद्वीप वैश्विक व्यापार संजाल का हिस्सा बन गये। जबकि सत्रहवीं शताब्दी का पहला भाग अपेक्षाकृत शान्ति का काल था, शताब्दी का दूसरा भाग और तेरहवीं शताब्दी की शुरुआत का काल राजपूत, जाट, मराठा और सिख लोगों के निरंतर युद्ध और टकराव की गाथा है। यह विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों और मुगलों के साथ उनकी अन्तःक्रियाओं पर भी ध्यान देता है। समुद्री संजाल, संस्कृति और समाज के साथ व्यापार और वाणिज्य पर चर्चा इस अवधि के इतिहास को समझने के लिए एक नया परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है। पाठ्यक्रम मुगल साम्राज्य के पतन के विश्लेषण के साथ समाप्त होता है, जिसके बाद अठारहवीं शताब्दी में कई स्वतंत्र क्षेत्रीय राज्यों का गठन हुआ।

इस प्रकार यह पाठ्यक्रम इस अवधि के समृद्ध इतिहास को जानने का प्रयास करता है, और आपको प्राकृतिक संसाधनों के लिए बढ़ती प्रतिस्पर्धा की जाँच–पड़ताल के साथ–साथ समाज, अर्थव्यवस्था, राज्य–व्यवस्था आदि की कार्यप्रणाली पर एक व्यापक अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। इस अवधि को प्रारंभिक आधुनिक युग के रूप में परिभाषित करने के प्रश्न को और महान विचलन के वाद–विवाद को छुआ गया है, ताकि आप बहस में शामिल मुद्दों से परिचित हो सकें।

खंड 1 मुख्य रूप से साहित्यिक परंपराओं से संबंधित है। यह फारसी, देसी भाषाओं की परंपराओं और यात्रा वृत्तांतों पर है और इस अवधि के ऐतिहासिक विकास को समझने के लिए महत्वपूर्ण स्रोत सामग्री के रूप में उनका महत्व है। खंड 2 सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में भारत की राजनीतिक परिस्थितियों से शुरू होती है और मराठों व बाद में सिखों के उदय

की जांच–पड़ताल करती है। यह भाग मुगल–राजपूत संबंधों की प्रकृति को भी उजागर करता है, जिसे टकराव और सहयोग कहा जा सकता है।

खंड 3 कारीगर उत्पादन प्रणालियों और वाणिज्यिक प्रथाओं की जांच करता है। इस खंड के तहत् भारतीय व्यापार और वाणिज्य की जटिलता और यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों के साथ इसके संबंधों को सम्बोधित किया गया है। वैश्विक व्यापार संजाल में हिन्द महासागर का बढ़ता महत्व जहाँ भारतीय उत्पादों की विभिन्न किस्मों की बढ़ती मांग को जन्म देता है, वहीं इसने भारत में कारीगर उत्पादन प्रणाली को और अधिक मजबूत किया। व्यापारिक समुदायों और व्यापारिक प्रथाओं की भूमिका और महत्व को भी विस्तार से बताया गया है।

खंड 4 सत्रहवीं शताब्दी की पहचान कई महत्वपूर्ण परिवर्तनों के साथ कराता है, विशेष रूप से राज्य के चरित्र, राज्य और धर्म के बीच संबंधों, धार्मिक विचारों, उन्नत प्रलेखन, ज्ञान तक अधिक पहुंच, विचारों का गठन, प्रसार और मुद्रा अर्थव्यवस्था की अधिक पैठ आदि के संबंध में, जिसकी वैश्विक प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है। इस्लाम में सहस्राब्दी और महदी का महत्व और इस्लामिक विचार, धार्मिक विचारों और आन्दोलनों के रूप में प्रतिध्वनित हुए। सोलहवीं शताब्दी में ब्रज क्षेत्र में कृष्णभक्ति स्थलों की पुनः खोज ने विभिन्न सम्प्रदायों के प्रतिवादी दावों को जन्म दिया। राजनैतिक संरक्षण को सुरक्षित करने और अपनी वैष्णव परंपराओं के रूप को फैलाने के प्रयासों के परिणामस्वरूप सम्प्रदायों के बीच टकराव हुए और इसके इतिहास पर चर्चा की गई है।

खंड 5 मोटे तौर पर दृश्य संस्कृति पर केन्द्रित है। शासक, चाहे मुगल हो या राजपूत या मराठा स्मारकों की प्रतीकात्मक शक्ति से अवगत थे। मुगलों को कई महत्वपूर्ण स्मारकों के निर्माण का श्रेय दिया जाता है; उनमें से कुछ अब यूनेस्कों की विश्व धरोहर स्थलों की सूची में हैं। इस काल में सराय व पुलों के साथ–साथ मन्दिर निर्माण को भी संरक्षण मिला। इस अवधि के लिए, सौभाग्य से, हमारे पास अच्छी संख्या में चित्र कलाएँ है, जो आमतौर पर पांडुलिपियों में उपलब्ध हैं। मुगल और कुलीन वर्ग कलाकारों को संरक्षण प्रदान करते थे, इस प्रकार हमारे पास फलती–फूलती चित्रकला थी। चित्रकला की परंपराएँ क्षेत्रीय विविधताओं के साथ और अधिक विकसित हुई, पहाड़ी, किशनगढ़ी, दक्कनी आदि। खंड में, दृश्य संस्कृति के तहत् इन विविध परंपराओं की विवेचना की गई है।

खंड 6 दरबारी संस्कृति की बारीकियों को विस्तार से बताता है। इस अवधि में, एक बहुत स्पष्ट शिष्टाचार और सांस्कृतिक प्रथाओं को विकसित किया था। मिर्जा और उनसे जुड़ी पुरूषत्व की धारणाओं को बहु–पोषित किया गया और उन पर दरबारी शिष्टाचार में बल दिया गया। अधीनता की परतों के साथ–साथ अभिकथनों को उजागर करने के लिए लिंग संबंधों की जाँच–पड़ताल की गई है।

खंड 7 अठारहवीं शताब्दी में मुगल पतन से संबंधित है और मुगल पतन के संभावित कारणों की व्याख्या करने के लिए प्रस्तावित विभिन्न सिद्धांतों पर विस्तार से बताता है। यह इकाई आपको महान विचलन वाद–विवाद के मुद्दे पर चल रही बहस से भी परिचित कराती है।

पाठ्यक्रम विकसित करने में हमारा जोर हमेशा सतत्ता और परिवर्तन पर रहा है। इसलिए इस पाठ्यक्रम **बी एच आई सी 112** को हमारे पाठ्यक्रम **बी एच आई सी 109** के साथ

अध्ययन किया जाना चाहिए। सोलहवीं शताब्दी के पहले के विकास **(बी एच आई सी 109)** को समझे बिना, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी **(बी एच आई सी 112)** का अलग–थलग अध्ययन नहीं किया जा सकता है। जैसाकि **बी एच आई सी 109** की पाठ्यक्रम प्रस्तावना में कहा गया है कि कुछ खंड हैं, जिन्हें इन पाठ्यक्रम के तहत् संबोधित किया जाना बाकी है। इसलिए इस तरह की विषय वस्तुओं को संबोधित करने वाली इकाइयों ने सोलहवीं शताब्दी में विकासों को भी ध्यान में रखा है।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

खंड 1 – स्रोत और साहित्यिक परंपराएँ

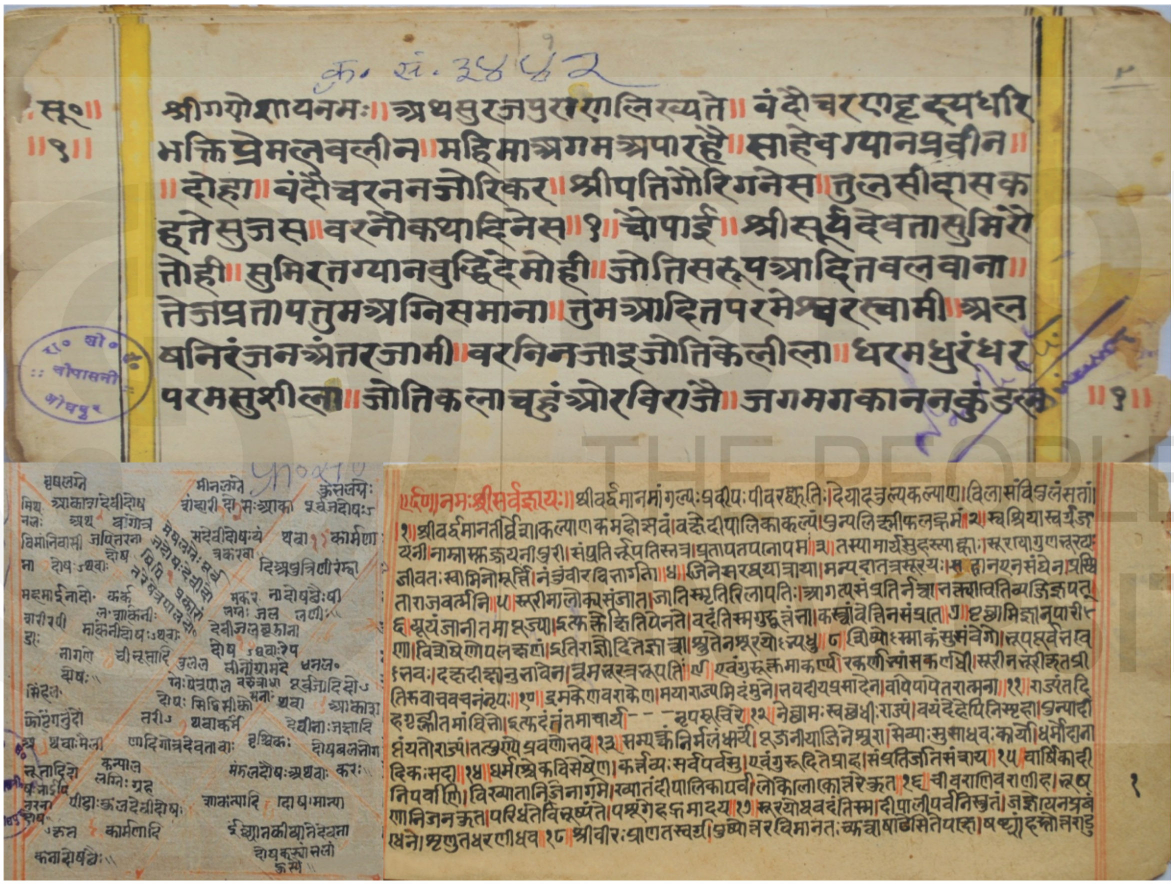

साभार : चौपासनी अनुसंधान संस्थान, जोधपुर

इकाई 1 फारसी इतिहास और संस्मरण*

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 फारसी का विस्तृत होता क्षेत्र

1.2.1 फारसी में प्रशिक्षण

1.2.2 लिपिकों के लेखन

1.3 संस्मरण

1.3.1 जहाँगीरनामा

1.3.2 पादशाहनामा

1.4 नामा परपंरा

1.5 दबिस्तान–ए–मजाहिब

1.6 शब्दकोश

1.7 मुगल दरबार से परे फैलाव

1.7.1 क्षेत्रीय नकलें

1.8 फारसी और देशी भाषाएँ

1.8.1 उर्दु का उद्‌य

1.8.2 दो–भाषी

1.9 सारांश

1.10 शब्दावली

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपः

- सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के दौरान लिखे गये कुछ फारसी ग्रन्थों से परिचित होंगे;
- मुगल भारत में फारसी के लिपिक वर्ग के विकास को जानेंगे;
- दरबारों की भाषा के रूप में फारसी के विकास के साथ–साथ अन्य क्षेत्रों में इसके प्रवेश को समझेगें; और
- भारतीय देशी भाषाओं पर फारसी के प्रभावों को सराहेगें।

*डॉ. प्रतीक, मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

1.1 प्रस्तावना

सत्रहवीं और अठारहवीं सदी भारत को फारसी भाषा के और अधिक विकास से चिन्हित किया जा सकता हैं। बादशाह अकबर के शासनकाल के दौरान जिस प्रक्रिया ने गति प्राप्त की थी उसने अगली दो शताब्दियों के दौरान अदब, अखलाक, साहित्य और दरबारी शिष्टाचार के क्षेत्रों में फारसी भाषा के व्यापक प्रसार के लिए उसमें और अधिक तीव्रता दिखी। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में फारसी के विकास को, एक साथ होने वाली, तीन महत्वपूर्ण प्रक्रियाओं से समझा जा सकता है। सबसे पहले, मुगल साम्राज्य की राजनैतिक शक्ति ने स्वयं को मजबूती से स्थापित कर लिया था जिससे राज्य गठन की तीव्रता बढ़ गई थी, और जिसके लिए साम्राज्य के तंत्र को प्रबन्धित करने के लिए एक विस्तृत प्रशासनिक व्यवस्था की आवश्यकता थी। फारसी के मुगल साम्राज्य की आधिकारिक भाषा होने के कारण, मुख्य रूप से फारसी भाषा में लिखे गये सभी प्रकार के प्रशासनिक दस्तावेजों, अभिलेखों और सम्प्रेषणों के उत्पादन में जबरदस्त उभार देखा गया। दूसरे, मुगल दरबार नैतिक मूल्यों, आचार संहिता, दरबारी शिष्टाचार को विकसित करने वाली उच्च संस्कृति के प्रसार का केन्द्र था। और इसने भारत के राजनैतिक अभिजात वर्ग द्वारा अनुसरण और अनुकरण के लिए एक आदर्श उदाहरण स्थापित किया। इस प्रकार फारसी उच्च संस्कृति और परिष्करण की भाषा बन गई। इस प्रकार विकसित फारसी अदब (परिष्कृत आचरण) और अखलाक (नैतिकता) साहित्य ने मुगलों को भारत में और बृहद फारसी दुनिया में भी उन्हें केन्द्र में रखने के उनके राजनीतिक प्रयास में मदद की। भारत के सभी क्षेत्रों में फारसी साहित्यिक उत्पादन का प्रसार इस काल की एक खास विशेषता थी। तीसरा, फारसी ने भारत की विभिन्न स्थानीय संस्कृतियों और देशी भाषाओं पर, फारसी संवेदनाओं, कल्पना, काव्य रूपों और शैलियों से परिचित कराकर, बहुत प्रभाव डाला। फारसी ने बड़ी संख्या में बहु–भाषाविदों, देशी कवियों, नौकरशाहों और साहित्यकारों की मदद से, जो विभिन्न क्षेत्रीय भाषाओं के बीच सांस्कृतिक विनिमय कर सकते थे, देशी भाषाओं और बोलियों पर परस्पर प्रभाव डाला। अठारहवीं शताब्दी में इस अन्तःक्रिया के कारण रेख्ता का उदय हुआ, जिसकी परिणति उर्दू के रूप में एक पूर्ण भाषा के विकास के रूप में हुई, जिसने बाद के मुगलों की अवधि के दौरान इसने वास्तव में इसे प्रतिस्थापित कर दिया।

पर्शियन जिसे 'फारसी' के नाम में भी जाना जाता है, कई पूर्व आधुनिक समाजों में साहित्यिक भाषा रही थी और यह गैर–अरब इस्लामी दुनिया में सम्पर्क भाषा के रूप में कार्य करती थी। यह एक ऐसी भाषा थी जिसने भारत को वृहत मध्य–एशिया और मध्य–पूर्व क्षेत्रों से जोड़ा। फारसी बोलने वाली दुनिया के लिये भारत के बारे में ज्ञान और जानकारी का निर्माण करने का एक माध्यम बन गई। भारत की धन और वैभव की एक भूमि की छवि ने दुनिया भर से विशेष रूप से फारसी भाषी इस्लामी दुनिया से प्रतिभाओं को आकर्षित किया। मार्शल हॉगसन ने अपनी पुस्तक, द वेचंर ऑफ इस्लामः द एक्पेशंन ऑफ इस्लाम इन द मिडिल पीरियड्स, में पर्शिनियेट शब्द गढ़ा था, जिसमें उन्होंने कहा कि फारसी "साहित्यिक स्तर पर अभी भी अन्य भाषाओं के उदय के लिए मुख्य प्रतिमान थी ... उच्च संस्कृति की अधिकांश स्थानीय भाषाएँ जिनका बाद में मुसलमानों द्वारा इस्तेमाल किया गया था, वैसे भी, पूरी तरह हो या आंशिक रूप से, अपनी साहित्यिक प्रेरणा के लिए फारसी पर निर्भर थी। हम फारसी में नजर आती या फारसी प्रेरणा को प्रतिबिंबित करने वाली सांस्कृतिक परंपराओं को, 'पर्शिनियेट' कह सकते हैं"। आमतौर पर गैर मुस्लिम दुनिया के इतिहास और साहित्य का अध्ययन करने के लिए

विद्वानों द्वारा पर्शिनियेट' की इस अवधारणा का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। मध्य–पूर्वी क्षेत्र और मध्य–एशियाई क्षेत्र की बृहद राजनैतिक संस्कृति में भारतीय उपमहाद्वीप के शासकों द्वारा प्राप्त महत्वपूर्ण स्थिति पर प्रकाश डालते हुए रिचर्ड एम. ईटन ने भारत के इतिहास में 1000–1765 के बीच की अवधि को पर्शिनियेट युग के रूप में परिभाषित किया है। हालांकि, ईरानी और फारसी के बीच अन्तर को समझना महत्वपूर्ण है। फारसी ईरान की संस्कृति और 'फारसी' संस्कृति से पहचानी जानी वाली दुनिया दोनों को दर्शाती है, इसलिए फारसी होने का मतलब मात्र ईरानी नहीं है। भारतीय उपमहाद्वीप के उदाहरण इस अन्तर को और अधिक स्पष्ट करते हैंः अमीर खुसरो एक फारसी कवि थे जो ईरानी नहीं थे, बल्कि एक भारतीय थे जिन्होंने फारसी भाषा में लिखा था। फारसी साहित्य केवल ईरान के लिए ही नहीं था बल्कि एशिया के बड़े भाग में प्रचलित था। सुनील शर्मा ने अपनी पुस्तक मुगल अर्काडियाः पर्शियन लिटरेचर इन एन इंडियन कोर्ट में इंडों फारसी साहित्य को ''फारसी साहित्य के निकाय के रूप में परिभाषित किया है, जो उपमहाद्वीप से संबंधित था अैर सचेतन रूप से तैयार किया गया था, चाहे लेखक भारतीय या ईरानी मूल का रहा हो''। इंडों फारसी साहित्य ने अपनी विशिष्ट शैली के साथ फारसी दुनिया में एक विशिष्ट स्थान और पहचान बनाई थी, जिसे सबक–ए–हिन्दी और इस्तेमाल–ए–हिन्दी के नाम से जाना जाता है।

1.2 फारसी का विस्तृत होता क्षेत्र

भारत में फारसी की कई विधाएं प्रचलित थीं जैसे तारिख (इतिहास), संस्मरण, मालफ़ुज़ात (सूफी निर्देशात्मक साहित्य), तज़कीरा (जीवनी संग्रह), नसीहत–नामा (सलाह साहित्य), वाकया (दरबार की कार्यवाही की रिपोर्ट), अखबारात, (समाचार रिपोर्ट), दस्तूर–अल–अमल (राजस्व नियमावली), ईंशा (राज्य के दस्तावेजों और पत्रों की रचना), मनाकिब (स्तुति वर्णन), फरहांग (कोश रचना), अदब (शिक्षात्मक ग्रन्थ), अखलाक् (नैतिकता) आदि और अनेक अन्य। कविताओं में फारसी की प्रमुख शैलियों के रूप में मसनवी (लम्बा छन्दबद्ध वृत्तांत), गजल (प्रेम कविताएँ) और कसिदा (गीति काव्य) थीं।

अकबर द्वारा सभी स्तरों पर प्रशासन की आधिकारिक भाषा के रूप में अपनाने के निर्णय से भारत में फारसी भाषा को बढ़ावा मिला। यह परिवर्तन जाने माने ईरानी अभिजात्य फतुल्लाह शिराज़ी द्वारा लाया गया था, जिन्होंने मुगलों को राजस्व प्रणाली और अन्य प्रशासनिक कार्यालयों को सुव्यवस्थित करने में मदद की थी। यह ईरानी लिपिक (नवीसिन्दगन) और मुतसद्दी थे जिन्होंने फारसी भाषा और लेखे–जोखे में अपनी दक्षता के कारण मुगल प्रशासनिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया। लेकिन जल्द ही रिकार्ड रखने और लिखित दस्तावेजीकरण की परंपरा में वृद्धि के कारण, सत्रहवीं शताब्दी में हिन्दु लिपिकों का एक वर्ग उभरा, जिन्होंने भारत में मुगलों की सत्ता की स्थापना के बाद बदलती राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों में स्वयं को अनुकूलित किया। फारसी ने कायस्थों, खत्रियों, वैश्यों और ब्राह्ममणों के लिए अवसरों के द्वार खोले जो भारत के पारम्परिक लेखाकार, लिपिक और सचिव थे। फारसी के द्वारा हिन्दवी के विस्थापन ने इन जातियों को मकतबों (स्कूलों) और मदरसों में फारसी सीखने के लिए प्रेरित किया और जहाँ उन्होंने राजस्व पत्रकार, भूमि पंजीयक (कानूनगो), ग्राम लेखाकार (पटवारी), सर्वेक्षक, याचिका लेखक, पत्र लेखन (ईंशा), लेखाविधि (सियाक), अदालत के पाठक, सचिव और लिपिक (मुंशी, मुनीम) बनने का कौशल हासिल किया।

1.2.1 फारसी में प्रशिक्षण

मदरसों में फारसी पढ़ने वाले छात्रों ने पहले अंकगणित (सियाक, हिसाब), माप (मसाहत), गणित (रियाजी), ज्यामिति, घरेलू अर्थशास्त्र (तदबीर–इमंजिल), चिकित्सा, तर्क, प्रशासन के नियम (सियासत ए मुदुन), भौतिक और आध्यात्मिक विज्ञान (तबी और इलाही), आदि की कुछ मूल बातें सीखीं। गहन ज्ञान के लिये शेख सादी के *बुस्तान* और *गुलिस्तान*, ख्वाजा नसीरूद्दीन तुसी के *अखलाक–ए–नासिरी* आदि का अध्ययन शामिल था। पठन के लिए नियत आवश्यक इतिवृतों में *तारिख–ए–गुज़िदा, ज़फरनामा, हबीब–उस–सियार*, अबुल फजल का *अकबरनामा* आदि थे। अबुल फजल के इन्शा लेखन की कला भी एक आवश्यक पठन सामग्री थी।

1654 में बादशाह औरंगजेब के अपने बेटे मुहम्मद सुल्तान को लिखे गये पत्र से यह विदित होता है कि शाही घराने की शिक्षा और शिक्षण में फारसी को अन्य भाषाओं पर विशेषाधिकार प्राप्त था। उन्होंने शहजादे को फारसी गद्य और कविता पढ़ना और लिखना सीखने की सलाह दी। उन्होंने आगे विस्तार से बताया, *अकबरनामा* को फुर्सत में पढ़ें ताकि आपकी बातचीत और लेखन की शैली शुद्ध और सुरूचिपूर्ण हो सके। इससे पहले कि आप शब्दों के अर्थों और उनके इस्तेमाल किये जा सकने वाले उचित संबंध में पूरी तरह से महारत हासिल ना कर लें, उन्हें अपने भाषणों और पत्रों में इस्तेमाल ना करें। आप जो बोलते या लिखते हैं उस पर ध्यान से विचार करें।

1.2.2 लिपिकों के लेखन

इसका एक बेहतरीन उदाहरण मुंशी चन्दरभान ब्राह्मण द्वारा लिखी गई पुस्तक (1666–70) *चहार चमन* (चार बगीचे) है। उनका जन्म सोलहवीं शताब्दी के अन्त में लाहौर, पंजाब में हुआ था और उन्हें जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगजेब, तीनों बादशाहों के यहाँ सेवा करने का अनुभव था। वह एक अभिजात्य राज्य सचिव, फारसी कवि और गद्य लेखक थे, जिनकी पुस्तक *चहार चमन* मुगलों की सेवा करने के उनके व्यक्तिगत अनुभवों का एक वृत्तांत और विशेषज्ञ सचिव बनने के लिए आकांक्षी लोगों के लिए एक नियमावली थी। इस प्रकार पुस्तक की शैली संस्मरण सलाह पुस्तक (नसीहतनामा) थी, जिसमें नैतिक व्यवहार (अखलाक), रहस्यमय संवेदनाओं, शिष्टता, दक्षता, सार्वजनिक नैतिकता, नीति प्रायणता आदि पर जोर दिया गया था। उन्हें अपने ब्राह्मण वंश पर गर्व था और उन्होंने अपनी धार्मिक ब्राह्मणवादी पृष्ठभूमि को श्रेय दिया जिसके कारण वह फारसी इस्लामी रहस्यवाद को समझ पाये थे। शाहजहाँनाबाद (दार–अल–हुकूमत) और लाहौर (दार–अल–सलामत) के शहरों के वर्णन के लिए उनकी पुस्तक विशेष रूप से महत्वपूर्ण है।

राज्य सेवा में शामिल होने की लिपिक परिवारों के बीच एक पुरानी परंपरा थी। मुंशी चन्दरभान ने अपने बेटे ख्वाजा तेजभान को प्रशिक्षित किया था, जिससे एक कुशल मुंशी के रूप में मुगल सेवा में शामिल होने की पारिवारिक परंपरा को जारी रखने की उम्मीद की गई थी। चन्दरभान का अपने पुत्र के नाम पत्र इस तरह के इच्छुक प्रशिक्षुओं के लिए निर्धारित प्रशिक्षण पद्धति, अनुक्रमणीय पाठ्यक्रम और शिक्षात्मक मूल्यों का एक मूल्यवान उदाहरण है। उन्होंने सलाह दी कि एक मुंशी को "मुगल प्रणाली के मानदंडों या अखलाक में प्रशिक्षण से गुजरना चाहिए क्योंकि इससे ज्ञान का विस्तार होगा; इतिहास, दीवान और मसनवी की रचनाओं को पढ़ना चाहिए; सियाक और नवीसिदंगी (लिपिक तकनीक) के कौशल सीखने चाहिए, क्योंकि एक

व्यक्ति जो अच्छे गद्य को लेखाविधि से मिलान कर सकता है वह 'रोशनी के बीच भी एक उज्जवल प्रकाश है'; उसे बुद्धिमान और सद्गुणी होनी चाहिए; और सबसे बढ़कर अपनी भाषायी क्षमताओं को बढ़ाना और सुधारना चाहिए''।

चहार चमन, चन्दरभान की एक अन्य रचना *मुशांत–ए–ब्राह्मण* के साथ सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में फारसी गद्य लेखन में सबसे अधिक प्रचलित रचनाओं में से दो रचनाएँ थी। वह लिपिक समुदाय के लिए प्रेरणा बने रहे जैसा कि हिसार के बालकृष्ण ब्राह्मण के उदाहरण से पता चलता है, जिन्होंने अपने आदर्श व्यक्ति चन्दरभान की शैली का अनुकरण करके *चहार बहार* लिखा था। वह शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन काल के दौरान मुगल प्रशासनिक सेवा में थे। मुगल प्रशासन के लिपिकों और सचिवों द्वारा रचित कुछ महत्वपूर्ण रचनाएँ मुल्तान के हरकरन दास काम्बोह द्वारा जहाँगीर के शासनकाल के दौरान लिखा गया; *इन्शा–ए–हरकरन;* सुजान रॉय भंडारी (बटालवी) का *खुलासत–उत–तवारीख* (इतिहास का सार); औरंगजेब के शासनकाल के दौरान लिखे गये मुंशी और मलिकजादा के उपनामों से रचित एक अज्ञात लेखक का *निगारनामा–ए–मुंशी,* अठारहवीं शताब्दी में राय चतुरमन सक्सेना का *चहार गुलशन* हैं।

1.3 संस्मरण

इस अवधि के दौरान संस्मरण और आत्म कथाएँ और जीवन कथाऐं लिखने की एक सुस्थापित परंपरा रही है। बाबर ने अपने संस्मरण यद्यपि तुर्की भाषा में लिखे थे। बनारसी दास को जहाँगीर के शासनकाल के दौरान देशी भाषा में आत्मकथा लिखने का श्रेय दिया जाता है। फारसी में हमारे पास जहाँगीरनामा है।

1.3.1 जहाँगीरनामा

जहाँगीरनामा या *तुजुक–ए–जहाँगीरी* सत्रहवीं शताब्दी में लिखा गया एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है जो संस्मरण शैली में लिखा गया है और जो डायरी लेखन की शैली के समान व्यक्तिगत यादों के संकलन से संबंधित है। सम्राट जहाँगीर (1569–1627) ने अपने परदादा बाबर द्वारा निर्धारित साहित्यिक परंपरा का अनुपालन करते हुए यह आत्मकथा लिखी, जिन्होंने *बाबरनामा* या *तुजुक–ए–बाबरी* की रचना की थीं। जहाँगीर ने 1622 तक स्वयं इस पुस्तक की रचना की और फिर मुतामद खान, उनके दरबारी इतिहासकार को वर्णन जारी रखने के लिए कहा। मुतामद खान ने 1624 तक सम्राट जहाँगीर के सहयोग से *जहाँगीरनामा* लिखा था जहाँ वृत्तांत अचानक समाप्त हो जाता है। *जहाँगीरनामा* पांडुलिपि के तेहरान संस्करण में मोहम्मद हादी द्वारा लिखित 1624 से 1627 तक की घटनाएँ दर्ज हैं।

जहाँगीरनामा फारसी की सरल लेकिन धारा प्रवाह शैली में तुर्की, हिन्दुस्तानी और कश्मीरी शब्दावली के साथ लिखा गया है। यह कालानुक्रमिक वार्षिक वृत्तांत जैसे तरीके से लिखा गया है, जो राजनीति, धर्म, सामाजिक मुद्दों और कला के बारे में जहाँगीर की विश्व दृष्टि का प्रतिनिधित्व करता है और एक प्रकृतिवादी, बुद्धिमान, न्याय संगत और कला के महान संरक्षक के रूप में उनकी अपनी छवि का निरूपण करता है। जहाँगीर चाहते थे कि उनकी आत्मकथा राजत्व पर एक अनुकरणीय सलाह पुस्तक के रूप में काम करे इसलिए उन्होंने इसका अनुवाद ओटोमन तुर्की में भी करवाया। उन्होंने *जहाँगीरनामा* की सुंदर रूप से चित्रित प्रतियाँ विश्व के विभिन्न भागों में भेजी।

1.3.2 पादशाहनामा

शाहजहाँ (1592–1666) ने मुहम्मद अमीन काजविनी को एक दरबारी इतिवृत *पादशाहनामा* (1638) का लेखन सौंपा, जिसने शाहजहाँ के शासनकाल के पहले दस वर्षों (1627–1637) का विवरण लिखा। इतिहास लेखन की इस शैली को तवारीख के रूप में जाना जाता है। काजविनी ने बताया कि शाहजहाँ ने अपने पूर्वज तैमूर की तरह पादशाहनामा की परियोजना में काफी रूचि ली। शाहजहाँ ने अब्दुल हमीद लाहौरी को पहले दस वर्षों के वर्णन को फिर से लिखने का काम सौंपा क्योंकि वह इतिहास को रिकार्ड करने के इस्लामी तरीके का हवाला देते हुए सौर कैलेंडर तिथियों को चन्द्र केलन्डर तिथियों में बदलना चाहता था। लाहौरी ने पादशाहनामा के नाम से शाहजहाँ के बीस वर्षों के शासन का विस्तृत विवरण तैयार किया। लाहौरी ने शाहजहाँनाबाद के निर्माण, इसकी वास्तुकला, किले और दिल्ली के बाजारों का वर्णन खूबसूरती से किया है। शाहजहाँ के शासनकाल के तीसरे दशक का लेखा–जोखा लाहौरी के शिष्य मुहम्मद वारिस ने लिखा था।

1.4 नामा परपंरा

औरंगजेब का शासनकाल (1658–1707) इतिहास के किसी भी पूर्ण आधिकारिक इतिवृत के बिना है। औरंगजेब ने शुरुआत में मिर्जा मुहम्मद काजिम को *आलमगीरनामा* अपने शासनकाल के इतिहास को विशिष्ट शैली नामा या आधिकारिक वार्षिक वृत्तांत की शैली में लिखने का आदेश दिया, जो इतिहास का एक अत्यधिक छानबीन करने वाला और बादशाह की रुचि के अनुकूल संस्करण था। इस तरह के इतिवृत लिखने के लिए उपयोग किये जाने वाले स्रोत वही थे जो *अकबरनामा* के समय में अबुल फजल द्वारा इस्तेमाल किये गये थे जैसे वाक्यानवी (घटनाओं का लेखक) के रिकॉर्ड, प्रान्तों से केन्द्र को भेजी गई गुप्त समाचार रिपोर्ट और अखबारात्–ए–दरबार–ए–मुअल्ला (दरबार की कार्यवाही और बादशाह के शिविर की रिपोर्ट)। इतिहासकारों ने बादशाह के परिप्रेक्ष्य से लिखे गये इतिहास का एक सटीक दिनांकित और विस्तृत संस्करण बनाने के लिए इन संसाधनों का कुशलता से उपयोग किया।

औरंगजेब ने अपने शासनकाल के दसवें वर्ष (1668) में इतिहास लेखन की परियोजना को रोक दिया और अरबी में *फतवा–ए–आलमगीरी* के शीर्षक के तहत् इस्लामी कानूनों को संहिताबद्ध करने का आदेश दिया। जदूनाथ सरकार ने तर्क दिया है कि इतिहास लेखन की अत्यन्त महँगी परियोजना को बन्द करने के पीछे राज्य की चिन्तनीय वित्तीय अवस्था प्रमुख कारक था। इसलिए, आधिकारिक इतिहास आलमगीरनामा औरंगजेब के शासनकाल के पहले दस वर्षों तक का ही है।

औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह के वजीर इनायतुल्लाह खान के अनुरोध पर साकी मुस्तैद खान द्वारा उनके शासनकाल के इतिहास को पूरा करने के इस कार्य को आगे बढ़ाया गया। इस कृति को *मासिर–ए–आलमगीरी* के नाम से जाना जाता है। जिसे दो भागों में संकलित किया गया; पहला आलमगीरनामा का छोटा संस्करण था जिसमें सम्राट औरंगजेब के शासनकाल के पहले दस वर्षों को शामिल किया गया था और दूसरा भाग उनके शासनकाल के शेष चालीस वर्षों से संबंधित था। औरंगजेब आलमगीर के शासनकाल के बारे में निर्मित अन्य इतिहासग्रंथ मुहम्मद बख्तावर खान का *मिरात–अल–आलम*; अबुल फज़ल मामुरी का शीर्षक हीन इतिहास जिसे खफी खान ने अपनी रचना *मुन्तखाब–अल–लुबाब* (1731) में बड़े पैमाने पर शामिल किया था; भीमसेन का *नुस्खा–ए–दिलकुश* (1709); और एक गुमनाम इतिहासकार

द्वारा लिखित *तारिख–ए–शिवाजी* (1777), जो बाखर नामक मराठी देशी स्रोतों पर आधारित था, आदि हैं (देखें **इकाई 11, बी एच आई सी–144**)।

1.5 दबिस्तान–ए–मजाहिब

दबिस्तान–ए–मजाहिब (धर्मों के मत) 1653 में या उसके आसपास एक अज्ञात लेखक द्वारा संकलित किया गया था, जिसे मोबद, मुहसिन फानी, मिर्जा जुल्फिकार बेग और कैखुसरो इस्फानदयार जैसे भिन्न–भिन्न नामों से जाता है। पुस्तक समकालीन भारत में विभिन्न धर्मों और लोकप्रिय सम्प्रदायों का विवरण प्रदान करती है। यह बारह तालीयों या अध्यायों में विभाजित है जिसमें पहले पाँच अध्याय पारसी धर्म (जथुस्ट्र पंथ), हिन्दु धर्म और अन्य भारतीय संप्रदायों, बौद्ध धर्म, यहूदी धर्म और ईसाई धर्म के बारे में हैं। शेष सात अध्याय इस्लाम और उसके संप्रदायों से संबंधित हैं। यह कई मायनों में एक अनूठा और महत्वपूर्ण स्रोत है, खासकर क्योंकि यह पाठ्य संसाधनों के उपयोग के साथ–साथ व्यक्तिगत सर्वेक्षण पर आधारित है। ऐकेश्वरवादी संत कबीर पर पहली बार लिखित जानकारी प्रदान करने के लिए यह विशेष रूप से जाना जाता है। इतिहासकारों द्वारा सिख धर्म के बारे में इसमें उपलब्ध विस्तृत विवरण की बहुत सराहना की जाती है, क्योंकि वे लेखक के प्रत्यक्ष अवलोकन हैं जो नानकपंथ की सूक्ष्म समझ प्रस्तुत करते हैं। इरफान हबीव ने इस कृति को धर्म जैसे कठिन और जटिल मुद्दे के बारे में ज्ञान उपलब्ध कराने का एक काफी ईमानदार, निष्पक्ष और आवेगहीन बौद्धिक प्रयास कहा है।

1.6 शब्दकोश

गराईब–अल–लुघाट एक महत्वपूर्ण ग्रंथ है जो इस तथ्य की गवाही देता है कि फारसी भारत के जीवन में एकीकृत हो गई थी। इसकी रचना अब्दुलवसी हसँवी (सत्रहवीं सदी के अंत में) ने की थी जो दिल्ली से 150 किलोमीटर उत्तर–पश्चिम में स्थित हाँसी शहर में एक शिक्षक और अग्रणी बुद्धिजीवी थे। *गराईब–अल–लुघाट* की सही तारीख ज्ञात नहीं है, लेकिन अधिकांश हस्तलिपियाँ 1730 के दशक की हैं। *गराईब–अल–लुघाट* 'भारतीय शब्दों का एक रिकॉर्ड था जिसमें फारसी, अरबी या तुर्की (समानार्थ) शब्द प्रान्तों के लोगों की बोली में कम प्रचलित थे, यह इंगित करता है कि लोगों के बीच फारसी के एक से अधिक स्वरूप लोकप्रिय थे। यह दिल्ली और लाहौर जैसे शाही शहरों से दूर दराज के क्षेत्रों और कस्बों में मौजूद थी। फारसी देशी भाषा के साथ ऐसी जगहों में स्वतंत्र रूप से प्रचलित थी जिससे स्थानीय शब्द फारसी की शब्दावली में प्रवेश करते थे। *गराईब–अल–लुघाट* का शब्दकोश ऐसे शब्द–कोशों की श्रृंखला का हिस्सा था जो सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में *फरहंग–ए–जहाँगीरी, फरहंग–ए–सुरूरी* और *फरहंग–ए–रशीदी* आदि के रूप में दिखाई पड़ते हैं। अठारहवीं सदी के प्रसिद्ध कवि और बुद्धिजीवी सिराज अल–दिन अली खान आरजू (1756) ने *नवादिर–अल–अल्फाज* के शीर्षक के नाम से वसी के *गराईब–अल–लुघाट* का एक अधिक लम्बा संस्करण संपादित और प्रकाशित किया। उन्होंने देशी फारसी को दरबारों में इस्तेमाल होने वाली शाही उच्च फारसी में इस्तेमाल होने वाली फारसी के रूप में प्रचलित करने लिए वसी की कृति को संशोधित किया। अब्दुल वसी हँसवी की रचनाएँ उन्नीसवीं शताब्दी में भी लोकप्रिय रहीं, यह इस तथ्य से ज्ञात होता है कि गालिब ने भी *गराईब–अल–लुघाट* में फारसी के प्रांतीय स्वर की प्रमुखता की आलोचना की थी।

गराईब–अल–लुघाट का उदाहरण एक अन्य परिप्रेक्ष्य से विशेष हो जाता है, वह यह है कि इसके लेखक अब्दुल वसी हंसवी उस मंडली का हिस्सा नहीं थे जिसे शाही दरबारों में संरक्षण प्राप्त था। वह एक शिक्षक थे जिन्होंने फारसी सीखने और सिखाने पर, जैसे कि समद बारी (निसाब), सादी की रचनाओं पर टिप्पणियाँ, *जवायद–अल–फवायद* (फारसी व्याकरण) और सबसे प्रभावशाली *रिसालाह* (निबन्ध) जैसी अत्यन्त महत्वपूर्ण रचनाएँ लिखीं जिसने उनके नाम को घर–घर पहुँचा दिया। फारसी ने अपने लिए एक ऐसा स्थान और अर्थव्यवस्था बनाई थी कि यह हाँसी जैसे कस्बे में, अभिजात वर्ग के संरक्षण के बिना जीवित रह सकती थी। अब्दुल वसी जैसे बुद्धिजीवी जो कवि नहीं थे उन्होंने स्वयं को भारत में फारसी भाषा के विशेषज्ञ के रूप में स्थापित किया था। यह दर्शाता है कि प्रारंभिक आधुनिक भारत में फारसी केवल कविता या प्रशासनिक भाषा तक ही सीमित नहीं थी।

बोध प्रश्न 1

1) फारसी को भारत की आधिकारिक भाषा मानने की मुगल नीति के प्रमुख प्रभाव की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

2) सत्रहवीं और अठारहवीं सदी के दौरान लिखित कुछ प्रमुख फारसी पुस्तकों का सारांश लिखिए।

....

....

....

....

1.7 मुगल दरबार से परे फैलाव

आमतौर पर यह समझा जाता है कि प्रशासन और उच्च संस्कृति की भाषा होने के कारण फारसी की सभी देशी भाषाओं के ऊपर एक व्यापक आधिकारिक उपस्थिति थी। इस सर्वदेशीय और विदेशी भाषा, फारसी, को भारत के अभिजात वर्ग से अधिकतम् संरक्षण मिला। यह सदियों तक फलती–फूलती रही और दरबारी संरक्षण, शिक्षा, बौद्धिक ज्ञान उत्पादन और सबसे महत्वपूर्ण भारत की सैंकड़ों देशी भाषाओं और बोलियों के साथ चलते हुये भारतीय उपमहाद्वीप के हर हिस्से में पहुँची। उच्च सुसंस्कृत दरबारी प्रभाव से दूर भारत के आम लोगों की भाषा के रूप में यह दूरस्थ स्थानों, बाजारों, छोटे कस्बों और गाँव में प्रसारित हुई। दोनों स्थानीय भाषाओं जो गैर–साहित्यिक थी और देसी भाषाएँ जिन्हें भाखा या हिन्दवी के नाम से जाना जाता था, के साथ फारसी की परस्पर क्रिया के द्वारा साहित्यिक भाषाओं ने भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न हिस्सों में नई भाषाओं और बोलियों का निर्माण किया। इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि सल्तनत से मुगलकाल तक कई शताब्दियों के दौरान फारसी

भारतीय समाज में अच्छी तरह से स्थापित हो चुकी थी। आम हिन्दी कहावत ''हाथ कंगन को आरसी क्या, पढ़े–लिखे को फारसी क्या'' इस बात का सबसे अच्छा उदाहरण है कि शिक्षित होना फारसी जानने के समतुल्य था। फारसी शब्द पूरे भारत में आम जनता की बोली में धीरे–धीरे रिसकर पहुँच गयी थी। जिसके कारण द्वि–भाषी शब्द पुस्तिकाओं या शब्दकोशों का प्रसार हुआ, जिसने फारसी भाषी व्यक्तियों को हिन्दवी शब्दों का अर्थ समझाया और इसके विपरीत भी।

1.7.1 क्षेत्रीय नकलें

मुगलों के अधीन फारसी में इतिहास लेखन की परपंरा ने क्षेत्रीय अभिजात वर्ग के इतिहास और अभिलेखागार की समझ को गहराई से प्रभावित किया। जैसा कि अगली ईकाई में चर्चा की गई है, नैणसी द्वारा जोधपुर में संकलित *नैणसी री ख्यात* और *मारवाड़ रा परगना री विगत*, अबुल फजल की *आईने अकबरी* से सीधे प्रभावित थी। इसी तरह, गुजरात प्रान्त के राजस्व मंत्री मुहम्मद अली खान द्वारा गुजरात में *मिरात–ए–अहमदी* का संकलन किया गया था। यह 1748 और 1762 के बीच लिखी गई थी। यह एक ऐसे पाठ का एक अच्छा उदाहरण है, जिसमें क्षेत्रीय इतिहास के ऐतिहासिक वर्णन को विस्तृत अनुभवजन्य आँकड़ों के माध्यम से पूरा लिखा गया था। वह प्रान्त की बुनियादी राजनैतिक संरचना, इसकी भौगोलिक विशेषताओं और विभिन्न क्षेत्रों से अर्जित राजस्व राशि और सैन्य अनुचरों के वितरण के बारे में विवरण प्रदान करता है। इसमें गुजरात का ऐतिहासिक लेखा–जोखा, तुर्की सेना की विजय से पहले राजपूत शासकों के समय से शुरू किया गया है और फिर दिल्ली के सल्तनत शासकों का वर्णन किया गया है। उसने गुजरात सल्तनत का इतिहास लिखने के लिए सिकन्दर–बिन–मुहम्मद उर्फ मंझु की *मिरात–ए–सिकन्दरी* से बहुत कुछ उधार लिया है। यह जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगजेब के इतिहास और 1761 में पानीपत के युद्ध में मराठों की हार के बारे में बहुमूल्य जानकारी देता है। पुस्तक के खातिमा या परिशिष्ट में कस्बों, परगनों और धार्मिक स्थलों आदि का महत्वपूर्ण विवरण है।

1.8 फारसी और देसी भाषाएँ

जैसा कि ऊपर तर्क दिया गया है, यह मानना गलत होगा, कि फारसी केवल मुगल दरबारों या क्षेत्रीय शक्तियों के दरबारों तक ही सीमित रही। सत्रहवीं शताब्दी में फारसी और देसी भाषाओं के बीच जबरदस्त अन्तःक्रिया देखी गई, जिससे अक्सर दोनों की शब्दावली और साहित्यिक संवेदनाएं शामिल हुई।

1.8.1 उर्दु का उदय

अठारहवीं शताब्दी में भारत में उर्दु का उदय एक रसायनिक प्रतिक्रिया के समान है, जिसमें एक विदेशी तत्व जब देशी रसायनों के मिश्रण के साथ मिलाया जाता है, तो वह एक नये रसायन का उत्पादन करने के लिए रसायनों को उत्प्रेरित करता है। फारसी, जो कभी विदेशी भाषा थी उसका भारत में प्रवेश हुआ, लेकिन इसका विभिन्न बोलियों और भाषाओं की प्रचुरता वाले भारत के लोगों द्वारा स्वागत हुआ और यह विरासत का हिस्सा बनी। इसने फारसी भाषा में उपयोग की जाने वाली नई शैलियों और कल्पनाओं को पेश करके भारत की साहित्यिक संस्कृतियों को समृद्ध किया। इसने दिल्ली और उसके आस–पास बोली जाने वाली भाषा

खड़ी बोली (शुद्ध बोली) के साथ परस्पर क्रिया की, जिससे उर्दु नामक एक नई भाषा का उद्‌य हुआ। एक पूर्ण भाषा के रूप में उर्दु के विकास के कई चरण थे जिनमें रेख्ता देशी भाषा के साथ प्रयोग के प्रारंभिक चरण का प्रतिनिधित्व करता है। रेख्ता एक फारसी शब्द है, जिसका अर्थ है मिश्रित, घोला हुआ, अन्तर्विष्ट जो उस कविता का प्रतिनिधित्व करती है जब फारसी की एक पंक्ति हिन्दी की दूसरी पंक्ति के साथ बारी–बारी आती थी। मीर तकी मीर को अठारहवीं शताब्दी के सबसे महान उर्दु कवि के रूप में जाना जाता है जो खुद को रेख्ता का कवि कहते है। मीर ने अपनी *तजकिराह, निकतअश–शुआरा* में रेख्ता को 'काव्य के ऐसे रूप में परिभाषित किया है, जिसमें कविता की शैली और कविता फारसी कविता की है लेकिन इसमें भाषा दिल्ली के बुलन्द दरबार की है'। आइये एक उदाहरण पर गौर करें जिसमें एक रेख्ता कविता की सबसे प्रसिद्ध पंक्तियों का श्रेय गलत तरीके से अमीर खुसरों (लगभग 1253–1325) को दिया गया है। इसमें प्रत्येक पंक्ति का पहला भाग फारसी में हैं दूसरा आधा भाग ब्रज भाषा में हैः

जेहाल–ए–मिस्कीन मकुनत गाफुल दुराए नैना बनाए बतिया

किताब–ए–हिज्रा नदारम ऐजां ना लेहू काहे लगाए छतिया,

इस गरीब के हाल से तगाफुल ना बरत आँखे ना फेर बाते ना बना

अब जुदाई की ताब नहीं है मेरी जान मुझे अपने सीने से क्यूँ नहीं लगा लेता।

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि रेख्ता का यह नया रूप फारसी लिपि और खड़ी बोली तक सीमित नहीं था, बल्कि इसने नागरी लिपि में मिश्रित भाषाओं के कई अन्य संयोजन बनाए थे। इमरे बंगा कहते हैं कि रेख्ता को ''विस्तारित फारसी, गुरमुखी, कैथी या नागरी लिपियों में किसी भी कविता को कहा जा सकता है, जो सचेत रूप से देसी हिन्दवी (ब्रजभाषा सहित और सर्वदेशीय फारसी को मिश्रित करती है''। इसलिए, स्थानीय भाषाओं में सक्रिय साहित्यकारों के वर्गों में, फारसी–अरबी शब्दावली की उच्च सामग्री वाली भाषाओं के कुछ नये मिश्रित संस्करण बनाने के लिए, फारसी का आत्मसातीकरण किया गया था। मिश्रण और समामेलन के ऐसे उदाहरण इस धारणा को अस्वीकार करते हैं कि फारसी एक आधिपत्य वाली विदेशी भाषा थी जिसकी भारतीय देशी भाषाओं पर प्रतिष्ठित उपस्थिति थी।

1.8.2 दो–भाषी

बंगाल प्रांत भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे पूर्वी भाग है जहाँ फारसी ने सल्तनतकाल के दौरान एक मजबूत उपस्थिति स्थापित की थी। प्रशासन व फारसी के उपयोग के संबंध में अकबर की नीति मुगल भारत के अन्य क्षेत्रों के समान ही फलदायी ही रही। बंगाल में एक बड़ा नौकरशाही वर्ग विकसित हुआ जिसने बंगाल में फारसी की लोकप्रियता के लिए आधार तैयार किया जो उन्नीसवीं शताब्दी तक जारी रहा। चौदहवीं, पंद्रहवीं शताब्दी के दौरान बंगाल के साहित्य में प्रयोग होने लगे, जिसमें फारसी और विभिन्न बंगला बोलियों को समामेलित किया गया। मिश्रण की यह प्रक्रिया, जिसे हम उत्तर भारत में रेख्ता के नाम से जानते हैं, बंगाली के एक नये स्वर विस्तार को लोकप्रिय बनाने में त्वरित हुई जिसे दो–भाषी के नाम से जाना जाता है। दो भाषी जिसका अर्थ है द्विभाषी, एक नई शैली के रूप में पहली बार उन लेखकों के द्वारा शुरू की गई थी जो अरबी, फारसी और बांग्ला भाषाओं के विशेषज्ञ थे। दो भाषी में निर्मित प्रारंभिक साहित्य सामग्री, विषय–वस्तु और पात्रों में प्रबल इस्लामी प्रभाव दर्शाता है, खासकर इसलिए कि यह मुस्लिम विद्वानों द्वारा निर्मित किया गया था।

फकीर गरीबुल्लाह (लगभग 1680–1770) ने अपनी कृति *अमीर हमजा* के साथ इसे और लोकप्रिय बनाया, जो अपनी अत्यधिक फारसी शब्दावली के कारण पहले के बंगला साहित्य से भिन्न थी। फकीर गरीबुल्लाह और उनके शिष्य सैयद हमजा ने हुगली–हावड़ा क्षेत्र में बोली जाने वाली एक बोली में *हातिमताई* (1804), *जंगनाम, जयगुनेर पुथि* (1798) जैसे कई महाकाव्यों और कविताओं की रचना करके दोभाषी को लोकप्रिय बनाया। दोभाषी को पुथि (पुस्तक) और मुस्लिम बांग्ला जैसे अन्य नामों से भी जाना जाता है। ये महाकाव्य कविताएँ फारसी लिपि में लिखी गई थी, जो एक बहुमुखी देसी बांग्ला में अनुकूलित की गई थी, जो आसानी से फारसी व्याकरण का उपयोग कर सकती थी। दोभाषी ना केवल एक साहित्यिक भाषा थी, बल्कि हावड़ा, हुगली, सिलहट और चटगाँव में रहने वाले मुसलमानों की एक बड़ी आबादी द्वारा बोली जाती थी, जहाँ इसे पूर्वी नागरी और सिलहट नागरी लिपि में लिखा जाता था।

बोध प्रश्न 2

1) क्या यह कहना सही है कि प्रारंभिक आधुनिक काल में फारसी भारत में एक विदेशी भाषा बनी रही? अपने तर्क की पुष्टि के लिए उदाहरण दीजिए।

....

....

....

....

2) भारत में रेख्ता साहित्य के विकास का वर्णन कीजिए। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी के भारत में पाये जाने वाले रेख्ता के विभिन्न प्रकार क्या हैं?

....

....

....

....

1.9 सारांश

प्रशासन के फारसीकरण का तत्काल प्रभाव लिपिकों के एक बड़े वर्ग का विकास था, जिन्होंने मुगल प्रशासन में आकर्षक नौकरशाही नौकरियों तक पहुँच प्राप्त करने के लिए फारसी सीखी। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी, वे शताबिदयाँ थीं जब भारतीय लोग शिक्षा, विज्ञान, साहित्य, नैतिकता, राजनीति, संस्कृति और अर्थविज्ञान के अनेक क्षेत्रों में फारसी के साथ गहराई से जुड़े। भारतीयों ने न केवल भाषा में महारत हासिल की और फारसी की दुनिया में एक विशिष्ट *सबक–ए–हिन्दी* का निर्माण किया, बल्कि उन संवेदनाओं, कल्पनाओं, बौद्धिक और सांस्कृतिक परंपराओं को भी आत्मसात् किया जो फारसी भाषा ने पेश की थी। मुगलराज्य के सुदृढ़ीकरण के साथ फारसी का प्रसार कई गुणा बढ़ गया जहाँ यह एक परिष्कृत उच्च संस्कृति की भाषा के रूप में उभरी। पुस्तकों और शाही दस्तावेजों का प्रसार सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी की विशिष्टता है। अठारहवीं शताब्दी में फारसी जनता तक

गहराई तक पहुँची जिससे रेख्ता, नागरी रेख्ता, दोभाषी आदि के रूप में इसने नई मिश्रित देसी भाषाओं और स्वर विस्तार की प्रचुरता का निर्माण किया।

1.10 शब्दावली

फारसी : पर्शियन को इसके उपनाम फारसी के रूप में भी जाना जाता है, जो एक ईरानी भाषा है। जो इंडो–यूरोपीय भाषाओं की उपशाखा की ईरानी शाखा से संबंधित है।

रेख्ता : रेख्ता एक फारसी शब्द है जिसका अर्थ है डालना, मिलाना या मिश्रित। यह अठारहवीं शताब्दी में फारसी–अरबी शब्दावली के साथ मिश्रित खड़ी बोली के रूप में प्रकट हुई।

मुंशी : एक लेखक, सचिव, लिपिक या भाषाविद्, गद्य का रचनाकार।

दो–भाषी : दो–भाषी पूर्वी नागरी, सिलहेटी नागरी और फारसी–अरबी लिपि में लिखी नई बंगाली भाषा का एक अत्यधिक फारसीकृत स्वर विस्तार था।

परशियनेट वर्ल्ड : यह एक अन्तर्क्षेत्रीय या "विश्व" प्रणाली है जो धार्मिकता, शासनकला, कूटनीति, व्यापार, सामाजिकता, या व्यक्तिपरखता के उस साझा ज्ञान से उत्पन्न हुई जिस तक यूरेशिया के अन्तर्संबंध संगम बिन्दुओं पर लिखित फारसी के सामान्य उपयोग के माध्यम तक पहुंच थी और जो उस समय परिचालित था।

1.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) प्रशासन के फारसीकरण के सबसे महत्वपूर्ण परिणामों में से एक देसी नौकरशाही वर्ग का उदय है। तत्कालीन भारत की शिक्षा प्रणाली बुनियादी से उन्नत फारसी की शिक्षा की शुरूआत के कारण गहन रूप से बदल गई थी जो छात्रों को मुगल प्रशासन में नौकरी पाने में मदद कर सकता था। जल्द ही, भारत ईरान को पीछे छोड़ते हुए पर्शिनिएट दुनिया में सबसे अधिक फारसी साक्षर क्षेत्र बन गया।

2) सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी के दौरान लिखी गई कई फारसी पुस्तकें हैं। उनमें से कुछ हैं *तुजुक–ए–जहाँगीरी, चहार चमन, खुलासातुत–तवारिख, पादशाहनामा, मासिर–ए–आलमगीरी* आदि।

बोध प्रश्न 2

1) आमतौर पर यह माना जाता है कि अठारहवीं शताब्दी के अन्त में उर्दु ने आसानी से फारसी का सफाया कर दिया क्योंकि फारसी भारत में एक छोटे से अल्पसंख्यक वर्ग की भाषा थी। यह बड़े पैमाने पर जनता के लिए एक विदेशी भाषा के रूप में बनी रही, जिसने उर्दु को तहेदिल से स्वीकार किया क्योंकि वह एक स्थानीय भाषा थी।

2) रेख्ता का अर्थ मिश्रित और छिन्न–भिन्न हुआ होता है। फारसी की अखिल–भारतीय उपस्थिति से भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कई मिश्रित भाषाओं का विकास हुआ, जो एक सामान्य कारक के रूप में फारसी के साथ कई लिपियों में लिखी जाती थी। इसे दादुदयाल और सुन्दरदास जैसे निगुर्ण संतों की नागरी लिपि में और दक्कन और दिल्ली में रचित फारसी लिपि को प्रारंभिक रेख्ता कविता में देखा जा सकता है।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Subrahmanyam, Sanjay, and Muzaffar Alam. 2001. *Writing the Mughal World: Studies on Culture and Politics*. New York: Columbia University Press. doi:10.7312/columbia/9780231158114.001.0001

Habib, Irfan. 2000. "A Fragmentary Exploration Of An Indian Text On Religions And Sects: Notes On The Earlier Version Of The 'Dabistan-I Mazahib.'" *Proceedings of the Indian History Congress*, Vol. 61, pp. 474–91. http://www.jstor.org/stable/44148125.

Alam, Muzaffar. 1988. "The Pursuit of Persian: Language in Mughal Politics." *Modern Asian Studies* Vol. 32, no. 2, pp. 317–49. http://www.jstor.org/stable/313001.

Chatterjee, Kumkum. 2008. "The Persianization of 'Itihasa': Performance Narratives and Mughal Political Culture in Eighteenth-Century Bengal." *The Journal of Asian Studies*, Vol. 67, no. 2, pp. 513–43. http://www.jstor.org/stable/20203376.

Bangha, Imre. 2012. "Rekhta, Poetry in the Mixed Language: The Emergence of Khari Boli Literature in North India" in Francesca Orsini ed. *Before the Divide: Hindi and Urdu Literary Culture*. New Delhi: Orient Blackswan, pp. 22-88. Doi: (PDF) Rekhta, Poetry in Mixed Language | ImreBangha - Academia.edu.

Hakala, Walter. 2016. *Negotiating Languages, Urdu, Hindi and the Definition of Modern South Asia*, New York: Columbia University Press.

Sharma, Sunil. 2017. *Mughal Arcadia: Persian Literature in an Indian Court*, Massachusetts: Harvard University Press.

Kinra, Rajeev. 2015. *Writing Self, Writing Empire: ChandarBhan Brahman and the Cultural World of the Indo-Persian State Secretary.* Oakland: University of California Press. https://www.luminosoa.org/site/books/m/10.1525/luminos.3/

Jahangir, Emperor of Hindustan. *The Jahangirnama*. Freer Gallery of Art, Arthur M. Sackler Gallery, Smithsonian Institution, 1999. https://dx.doi.org/10.5479/sil.849796.39088018028456

Green Nile. 2019. *The Persianate Wolrd*. California: University of California Press. DOI: https://doi.org/10.1525/luminos.64.

Rezavi, Ali Nadeem. "*Sources of Aurangzeb's Reign*." 14 October 2021. https://rezavisblastfromthepast.co.in/2021/10/14/sources-of-aurangzebs-reign/.

Dudney, Arthur. 2019. 'Persian-Language Education in Mughal India from Qasbah to Capital', in Maya Burger and Nadia Cattoni, Eds., *Early Modern India: Literatures and Images, Texts and Languages*. Reprint, Heidelberg/ ; Berlin: Cross Asia-eBooks. https://doi.org/10.11588/xabooks.387.552.

इकाई 2 संस्कृत काव्य साहित्य, क्षेत्रीय स्रोत और यात्रा वृत्तान्त*

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 संस्कृत

2.3 क्षेत्रीय स्रोत

2.3.1 असमिया

2.3.2 बांगला

2.3.3 गुजराती

2.3.4 हिन्दी

2.3.5 कन्नड़

2.3.6 मलयालम

2.3.7 मराठी

2.3.8 ओडिया

2.3.9 पंजाबी

2.3.10 तमिल

2.3.11 तेलुगू

2.3.12 उर्दू

2.4 यात्रा वृत्तान्त

2.5 सारांश

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इसकी सराहना करेंगे:

- प्रारंभिक आधुनिक समय में भारतीय उपमहाद्वीप बहुभाषी था;
- संस्कृत फलती–फूलती रही और संस्कृत में मूल लेखन पाया जा सकता है;
- क्षेत्रीय केन्द्रों पर देशी भाषाओं का साहित्य फला–फूला;
- गद्य में लेखन धीरे–धीरे आगे बढ़ रहा था;
- सभी भाषाओं की विषय वस्तुओं में बहुत समानता थी; और

*डॉ. पंकज झा, लेडी श्रीराम कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

- यात्रा वृत्तान्त जानकारी के महत्वपूर्ण स्रोत हैं लेकिन इनका उपयोग सावधानी से किया जाना चाहिए।

2.1 प्रस्तावना

तथाकथित मुस्लिम काल के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप की साहित्यिक दुनिया पूरी तरह से बहुभाषी थी। सत्रहवीं और अठाहरवीं शताब्दी की शुरूआत में फारसी और अरबी के साथ–साथ संस्कृत और देशी साहित्यों का फलना–फूलना जारी रहा। इस अवधि के सभी ग्रन्थ विद्यमान नहीं हैं, लेकिन जो भी उपलब्ध हैं वे भी गिनती में बहुत अधिक है। उनकी विषय वस्तुओं में दर्शन, राजनैतिक नैतिकता (नीति), विज्ञान (शास्त्र), विधि (धर्मशास्त्र), भक्ति साहित्य, ज्योतिष, व्याकरण, पाककला, संगीत, काव्यशास्त्र की कला, प्रेम और सौन्दर्य शास्त्र (श्रृंगार), इतिहास और पौराणिक कथाओं के अलावा अन्य भी आते हैं। ये रचनाएं संकलन और डॉक्सोग्राफी, महाकाव्य के पुनर्कथन, नाटक, जीवनी, वंशावली, स्तुति पाठ, पुराण, स्मृति और टीकाओं की शैली पर संरचित कहानियों की शैलियों की विविधता के रूप में दिखाई पड़ती हैं। इनकी रचना तैमूर वंशी, राजपूत, मराठा, नायक और अन्य मुस्लिम और गैर–मुस्लिम शासकों के दरबारों में हुई थी। अनेक विद्वानों और कवियों ने किसी को भी अपने संरक्षक के रूप में स्वीकारोक्ति नहीं दी और यह बहुत अधिक सम्भव है कि उन्होंने या तो स्वयं इच्छा से या ऐसे संरक्षकों के अधीन काम किया जो या तो वर्णन योग्य न थे या ग्रंथ में स्पष्ट रूप से स्वीकारोक्ति के लिए संख्या में बहुत अधिक थे। कुछ क्षेत्र संस्कृत शिक्षा और ग्रंथ लेखन के केन्द्रों के रूप में उभरे, उनमें से अधिक प्रमुख थे, मिथिला, वाराणसी, श्रीनगर, पूणे, तंजावूर और कोचिन।

2.2 संस्कृत

हाल के शोधों से पता चलता है कि मुगल दरबार के साथ–साथ उसके सहयोगी और अधीनस्थ राजाओं के दरबारों ने संस्कृत विद्वानों को, विशेष रूप से ज्योतिष, कोश रचना, योग, संगीत, कविता के संकलन और प्रशस्ति काव्य (स्तुति रचना) में विशेषज्ञता हासिल संस्कृत विद्वानों को संरक्षण देना जारी रखा। जहाँगीर के अधीन परमानंद नामक एक ज्योतिषी ने ज्योतिष पर एक ग्रन्थ की रचना की जिसका शीर्षक था *जहाँगीर विनोद रत्नाकार*। ऐसा प्रतीत होता है कि मुगल शासकों ने दरबारी कवियों के साथ–साथ अपने संरक्षण के दायरे के बाहर वाले कवियों को भी अपनी प्रशंसा में काव्य रचनाएँ करने के लिए प्रेरित किया। मिथिला में हरिदेव मिश्र ने जहाँगीर की प्रशंसा में *जहाँगीर विरूदावली* नामक एक लंबी कविता की रचना की। शाहजहाँ के ज्योतिषी मलजीत वेदागंराय ने *पारसी–प्रकाश* नामक फारसी और संस्कृत का एक शब्दकोश लिखा था। प्रसिद्ध खगोलशास्त्री वैज्ञानिक नित्यानंद ने खगोल विज्ञान पर एक फारसी ग्रंथ का संस्कृत में अनुवाद किया और उसका नाम *सिद्धांत सिन्धु* रखा। फिर से, शाहजहाँ के निर्देश पर उसने *सर्वसिद्धांत राज* की रचना की जिसने उस समय तक संस्कृत में उपलब्ध भारतीय ज्योतिषीय ज्ञान को बताने की कोशिश की। शाहजहाँ के दरबार द्वारा संरक्षित दो सबसे प्रमुख संस्कृत विद्वानों में कविन्द्राचार्य सरस्वती और जगन्नाथ पंडितराज थे। कविन्द्राचार्य ने *योगवश्ष्ठि* (इसी नाम की संस्कृत रचना का एक हिन्दवी सार) और *कविन्द्र कल्पलता*, संगीत पर एक ग्रंथ जिसने कुछ रागों पर पार्श्व टिप्पणी प्रदान करते हुए शाहजहाँ की प्रशंसा की, की रचना की। जगन्नाथ पंडितराज ने दाराशुकोह और असफखान की प्रशंसा में प्रसिद्ध काव्यों की रचना की।

सत्रहवीं शताब्दी में वेनीदत्त का पद्यवेनी, कालिदस, भृर्तहरि, श्रीवर, कृष्णदास और कई अन्य कवियों सहित, जिनके बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है, लगभग सौ कवियों की कविताओं का एक महत्वाकांक्षी संकलन था। इसी तरह वाराणसी के विपुल बहुज्ञ विद्वान, कमलाकर भट्ट (सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में) विविध विषय वस्तु पर रचनाओं के लिए जाने जाते है। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में कोंद भट्ट एक व्याकरण विद् और गाग भट्ट एक व्याख्या शास्त्री जैसे अन्य व्यक्तियों का भी उदय हुआ। पूर्वी दार्शनिकों में जिन्होंने विशेष रूप से नव्य–न्याय मत के नये दार्शनिक विचारों को विकसित करना जारी रखा था, वे थे जगदीश तारकलंकर (लगभग 1625) और गदाधर भटाचार्य (लगभग 1650)।

विन्ध्य से दक्षिण की ओर बढ़ते हुए, संस्कृत साहित्य जीवंतता के साथ फला–फूला। नायक काल के लंबे आख्यान, अंशतः जीवनी संबंधी और अशंतः काल्पनिक, संस्कृत काव्य की एक स्थापित शैली थी। उदाहरण के लिए राममद्रम्बा की रघुनाथाभ्दुय प्रसिद्ध राधा रघुनाथ नायक की जीवनी पर आधारित स्तुति कविता थी। यज्ञनारायण दीक्षित की *साहित्य रत्नाकार* ने भी उसी नायक शासक की कहानी सुनाई। रघुनाथ के पिता अच्युप्पा नायक की जीवनी संस्कृत के प्रसिद्ध महाकाव्यों में से एक है। इस काल के संस्कृत साहित्यिक परिदृश्य को कई व्यंग्य रचनाओं से चिन्हित किया गया। प्रसिद्ध विद्वान नील कंठ दीक्षित ने सत्रहवीं शताब्दी की शुरूआत में ऐसा ही एक ग्रन्थ लिखा था। *कालीविडम्बना* में लेखक ने अपने समय की गहरी आलोचना की। उसी लेखक द्वारा *शिवलीलार्णव* (शिव के चौसठ खेल) और *आनन्दसागरसत्व* क्रमशः भगवान शिव और पार्वती (मीनाक्षी के रूप में) पर केन्द्रित ग्रन्थ थे। ये रचनाएँ संस्कृत काव्य और पौराणिक कथाओं के ताजगी भरे प्रयोगों के लिए जानी जाती हैं, और वे संस्कृत भाषा में 'मौलिक' रचनाओं के पतन के दावों का खंडन करती हैं।

विषयों की एक श्रृंखला, विशेष रूप से दार्शनिक टिप्पणियाँ, व्याकरण, अनुष्ठान, साहित्यिक सिद्धांत (अलंकार शास्त्र), और ज्योतिष पर विद्वानों की रचनाओं के संग्रह भी कम प्रभावशाली नहीं हैं। *रघुनाथभूपालिएः* नामक साहित्यिक सिद्धांत पर एक रचना में वास्तव में उपरोक्त रघुनाथ सभी छन्दों के नायक के रूप में थे, जिनको ग्रन्थ में उदाहरण के रूप में उद्धरित किया गया था। एक अन्य महत्वपूर्ण साहित्यकार श्रीनिवास दीक्षित ने जिंजी के नायक दरबार में एक मन्त्री के रूप में कार्य किया और बताया जाता है कि उन्होंने अठारह नाटकों और अनेक अन्य काव्यों की रचना की थीं, इसी तरह से तंजौर के गोविन्द दीक्षित ने *साहित्य सुधा* और *संगीत सुधा निधि* जैसे ग्रंथों की रचना की। जबकि पहली रचना उस समय की राजनीतिक घटनाओं पर दिलचस्प जानकारी देती है, बाद वाली रचना संगीत पर एक उपयोगी ग्रंथ है।

महान मराठा शासक शिवाजी ने भी प्रभावशाली साहित्यिक रचनाओं को प्रेरित किया। इनमें से कविन्द्र परमानंद के *श्रीशिवाभारत* का उल्लेख किया जाना चाहिए, जो स्वयं के प्रयासों से राजा बनने के जीवन और कारनामों पर आधारित एक महाकाव्य है। यह सत्रहवीं शताब्दी के मराठा इतिहास के सबसे महत्वपूर्ण स्रोतों में से एक है। दिलचस्प बात यह है कि इस रचना का बाद में कवि के बेटे और पोते ने, ग्रन्थ में संभाजी महाजाज की जीवनी को शामिल करके विस्तार किया।

जैसाकि स्पष्ट है, संस्कृत ने कम से कम सत्रहवीं शताब्दी तक अपनी सर्जनात्मक जीवन शक्ति को बनाए रखा। हालांकि, अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत तक भाषाओं के बीच विषय वस्तु विभाजन के दीर्घकालीक फेर–बदल के प्रभावों के अधिक ठोस परिणाम होने लगे।

प्राचीन काल से ही संस्कृत वैज्ञानिक अन्वेषण, दार्शनिक, चिंतन, साहित्यिक सिद्धांतों और कर्मकांडों और विधि के संहिताकरण के लिए एक उत्कृष्ट भाषा रही है। कम से कम तेरहवीं शताब्दी तक व्यवहारिक रूप से उच्च साहित्य पर इसका एकाधिकार था। फिर भी, गुजरात से बंगाल तक, कंधार और श्रीनगर से कोच्चि, तंजावूर, जावा और सुमात्रा तक फैले हुए अपने सर्वदेशीय क्षैतिज प्रसार के बावजूद, यह अपनी उच्चता से अपवर्जनात्मक थी और अधिकांश लोगों की पहुँच से बाहर थी। पंद्रहवी शताब्दी से राज्य गठन की निरंतर और तीव्र होती प्रक्रियाओं के साथ, कई दरबारों के शासक और राजकुमार पारंपरिक अभिजात वर्ग से परे संचार के अपने दायरे का विस्तार करने की कोशिश कर रहे थे। वे अक्सर स्थानीय भाषाओं में रचनाओं को संरक्षण देना पसंद करते थे, जिनकी समाज में संस्कृत की तुलना में बेहतर पहुंच थी। विद्वानों ने वैज्ञानिक और विद्वतापूर्ण रचनाओं के लिए भी अन्य भाषा विकल्पों का पता लगाना शुरू कर दिया था, जिसका एक कारण यह भी था कि संस्कृत ने समय के साथ चलना बंद कर दिया था। औपनिवेशिक हस्तक्षेप और अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ज्ञान निर्माण में बड़े पैमाने पर ज्ञान मीमांसीय व्यवधानों के साथ, वह भाषा जो कभी वैज्ञानिक शोध के लिए पसंदीदा माध्यम थी, तेजी से अनुष्ठान के उपयोग तक ही सीमित होने लगी भले ही सृजनात्मक चिंगारी यदा–कदा सुलगती रही।

फिर भी, सोलहवीं शताब्दी के अन्त से और अठारहवीं शताब्दी के मध्य की अवधी तक की संस्कृत रचनाएँ ज्ञान निर्माण, वैज्ञानिक और दार्शनिक परंपराओं, राजनैतिक विकास पर विविध दृष्टिकोण, सत्ता की आधिकारिक अभिव्यक्तियाँ और विधि और खगोल विज्ञान पर सार ग्रन्थ और निश्चित रूप से भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अत्यधिक महत्वपूर्ण और इतिहास लेखन का एक स्रोत हैं।

बोध प्रश्न 1

1) भारतीय उपमहाद्वीप में प्रारंभिक आधुनिक काल की साहित्यिक संस्कृति पर एक टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

2) संस्कृत में उपलब्ध विविध विधाओं के लेखन की चर्चा कीजिए।

....

....

....

....

2.3 क्षेत्रीय स्रोत

भारत के संविधान की आठवीं अनुसूची में 22 भाषाओं को मान्यता दी गई है। हालांकि, अनेक और भाषाएँ है, जिनका इस्तेमाल अभी भी देश में दस हजार से अधिक स्थानीय बोलने वालों

द्वारा किया जाता है। यहाँ तक कि भारत की जनगणना 1991 में भी 184 भाषाओं को सूचीबद्ध किया गया है। अपने बहुखंडी *लिंगविस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया* (1903–1923) में, जार्ज ग्रियर्सन ने 179 भाषाओं और 544 बोलियों को सूचीबद्ध किया था।

इतिहासकार ईसाई युग की दूसरी सहस्राब्दी की शुरुआत को दक्षिण एशिया में 'देशी भाषाकरण' के आगमन के रूप में देखते हैं। यह कई क्षेत्रीय भाषाओं या देश भाषा जैसा कि उन्हें संस्कृत में कहा जाता है, की बढ़ती लिखित उपस्थिति को संदर्भित करता है। प्राचीन भारत संस्कृत साहित्य की जीवंत संस्कृति का साक्षी था। दुनिया की बहुत कम भाषाएँ विषयों की प्रचुरता, सृजनात्मकता के परिमाण, शैलियों की विविधता, विषय वस्तुओं की विविधता और यहाँ तक कि इसके साहित्यिक कोश के विशाल आकार के संबंध में भी इसकी बराबरी कर सकती है। हालांकि, संस्कृत के विद्वान आमतौर पर सामाजिक आभिजात वर्ग से आते थे, और उन्होंने उत्साहपूर्वक अपने विशेषाधिकार की रक्षा की। उन्होंने इस विचार की वकालत की कि सच्चे साहित्य (काव्य) की रचना केवल संस्कृत में की जा सकती है, भले ही उन्होंने सैद्धांतिक रूप से यह भी स्वीकार किया कि साहित्य का निर्माण प्राकृत और अपभ्रंश में किया जा सकता है। ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी तक प्राकृत और अपभ्रंश सामान्य शब्द बन गये जिनका उपयोग उस किसी भी क्षेत्रीय भाषा को संदर्भित करने के लिए किया जाता है, जिन्होंने अपना साहित्य सर्जन करना शुरू कर दिया था। इसमें गुजराती (या गुर्जरी), शौरसेनी (बाद में पंजाबी), मराठी, अवधी, मैथिली, बांग्ला, असमिया, ओडिया, तेलुगू, हिन्दी/हिन्दवी/उर्दू और अनेक अन्य शामिल थीं।

इनमें से अधिकांश भाषाओं ने अपनी स्वयं की लिपि हासिल कर ली थी और ज्यादातर को एक से अधिक लिपियों में लिखा जाता था, जो लेखक के स्वयं के कौशल और वरीयता पर आधारित था। हालांकि इनमें से अधिकाशं भाषाएँ बारहवीं शताब्दी तक साहित्यिक हो गई थीं और उनमें से कुछ ने स्वयं के लिखित व्याकरण भी हासिल कर लिए थे, लेकिन उन्हें अभी तक विशिष्ट रूप से नामित नहीं किया गया था। यहाँ तक कि उनके लेखकों ने भी उन भाषाओं को या तो प्राकृत/अपभ्रंश या देश भाषा (एक स्थान की भाषा) या सिर्फ भाषा (शाब्दिक रूप से बोली) के रूप में संदर्भित किया था। (दूसरी ओर संस्कृत, फारसी, अरबी और तमिल व्यापक पहुँच वाली भाषाएँ थीं, इसलिए 'एक स्थान की भाषा' के रूप में चरित्र चित्रण होने से बच गई)। सत्रहवीं शताब्दी तक इनमें से अधिकांश भाषाओं में अपनी स्वयं की साहित्यिक रचनाओं का एक विशाल संग्रह उपलब्ध हो गया था। साथ में वे हमारे अध्ययन की अवधि में, अर्थात सत्रहवीं से अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक, जीवन के विभिन्न पहलुओं के इतिहास के पुर्न निर्माण के लिए एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्रोत हैं। यदि विडम्बना नही, तो आश्चर्यजनक है कि जिन भाषाओं को कभी साहित्यिक रचनाओं को पोषित करने की व्यवहारिक रूप से मनाही थी, वे अब न केवल जीवंत साहित्यिक माध्यम है, बल्कि आज शायद भारत में क्षेत्रीय पहचानों के गठन और जीवनाधार के लिए सबसे मजबूत संबल हैं।

प्रसिद्ध संस्कृतिवाद और इतिहासकार शेल्डन पोलक का अवलोकन है कि ईसाई युग की दूसरी सहस्राब्दी में भारतीय भाषाओं के बीच विषय वस्तु का एक अलिखित विभाजन था: जबकि संस्कृत का उपयोग वैज्ञानिक, दार्शनिक और अधिक सामान्यतः धर्म निरपेक्ष विषय वस्तुओं पर ग्रंथों की रचना के लिए किया जाता था, वहीं तथाकथित देसी भाषाओं को आमतौर पर भक्ति गीतों के संकलन सहित धार्मिक रचनाओं के लिए इस्तेमाल किया जाता था। जैसा कि हम आगे देखेंगे कि यह अवलोकन हमें भाषा की अपनी वरीयताओं की एक व्यापक समझ

देता है, लेकिन यह पूरी तरह सच नहीं है। विभिन्न विषय वस्तुओं पर ग्रंथों की रचना के लिए देश भाषा का भी उपयोग किया जाता था, भले ही धार्मिक विषय इसके एक प्रमुख भाग का निर्माण करते थे।

2.3.1 असमिया

उपमहाद्वीप की अधिकांश अन्य 'क्षेत्रीय' भाषाओं की तरह, असमिया भी प्राचीन काल से किसी ना किसी बोली के रूप में मौजूद हो सकती है। चीनी यात्री, ह्वेन सांग, जिन्होंने सातवीं शताब्दी में कामरूप के राजा भास्कर वर्मन के दरबार में कुछ समय बिताया, उन्होंने इसकी भाषा को 'मध्य' भारत की भाषा से थोड़ा भिन्न बताया। हालांकि, असमिया के लेखन के प्रारंभिक लिखित नमूने चौदहवीं शताब्दी से पहले के नहीं हो सकते। चौदहवीं–पंद्रहवीं के दौरान कामरूप और कूच बिहार के शासकों के संरक्षण में असमिया साहित्य की असली शुरुआत अक्सर माधव कंडाली (जिन्होंने रामायण को असमिया में रूपान्तिरत किया) और शंकर देव जो असम के सबसे प्रमुख और बहुमुखी वैष्णव कवि थे, जो पंद्रहवीं शताब्दी के मध्य से सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक फले फूले, इन दोनों के गीतों और अन्य रचनाओं से मानी जाती है। असमिया के भक्ति गीत और भजन कृष्ण के बचपन पर ध्यान केन्द्रित करने और राधा और कृष्ण के बीच प्रेम संबंधी चित्रण से बचने के लिए जाने जाते हैं, जैसाकि बंगाल और मिथिला में किया गया था।

भट्टदेव सोलहवीं शताब्दी के अन्त के एक अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तित्व थे जिन्होंने भगवद् गीता और भागवत पुराण का असमिया में अनुवाद किया। इसके बाद की अवधि में भाषा के व्याकरण और वर्णविन्यास में परिवर्तन देखा गया। खासकर जब अहोम दरबार के प्रभाव में ऐतिहासिक लेखन की गद्य के रूप में रचना की जाने लगी। इस संग्रह को 'बुंराजी' के रूप में जाना जाने लगा, और वे असमिया भाषी क्षेत्रों का इतिहास लिखने का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत है। यह उल्लेखनीय है कि बंगाल के उत्तरी भाग की भाषा असमिया से मिलती जुलती थी, मगर यह असमिया के समान नहीं है। दरअसल, इन क्षेत्रों में असमिया बोली के रूपों की प्रारंभिक आधुनिक काल में बंगाली बोली के रूपों में झलक मिलती है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि ब्रज बोली का साहित्यिक माध्यम, जिसे मध्यकालीन बंगाल और मिथिला में भक्ति गीतों की रचना के लिए इस्तेमाल किया गया था, उसका प्रयोग पहले उपरोक्त शंकर देव द्वारा किया गया था।

2.3.2 बंगाली / बांग्ला

बांग्ला रचनाओं की शुरुआत, साथ ही उस समय की कई अन्य पूर्वी बोलियों में साहित्यिक ग्रंथों की शुरूआत अक्सर आठवीं से बारहवीं शताब्दी के दौरान रचित बौद्ध और तान्त्रिक गीतों के एक विशाल समूह, चर्चा पदों से होती है। हालांकि, बांग्ला के विशिष्ट रूप से पहचाने जाने योग्य साहित्य को अक्सर श्री चैतन्य या चैतन्य महाप्रभु (1486–1534) से प्रेरित रचनाओं में अधिक विश्वसनीय रूप से देखा जाता है। इनमें से सबसे प्रमुख थे राधा कृष्ण के प्रेम को दर्शाने वाले गीत, और चैतन्य की कई जीवनियाँ, उदाहरणार्थ वृन्दावन दास द्वारा रचित *चैतन्य भागवत*, लोचनदास द्वारा रचित *चैतन्य मंगल*, और कृष्णदास कविराज द्वारा रचित *चैतन्य चरितामृत*। इस अवधि के अनेक वैष्णव गीतों की रचना बृजबुली के नाम से जाने वाली साहित्यिक बांग्ला की एक विशेष विधा में की गई थी।

बांग्ला साहित्य के विकास में एक महत्वपूर्ण चरण सोलहवीं और अठारहवीं शताब्दी के बीच मंगल काव्य नामक एक नवीन शैली में लंबी कथात्मक कविताओं की एक श्रृंखला की रचना थी। उनका वर्णनात्मक प्रारूप संस्कृत पुराणों के समान था, लेकिन वे कई अन्य मामलों में अद्वितीय थीं। भले ही शिव, पार्वती, इन्द्र और अन्य पौराणिक देवता मंगलकाव्य की जटिल कथा का एक अभिन्न अंग बने, लेकिन वे हमेशा स्थानीय पंथ के देवी–देवाताओं जैसे चंडी, मनसा, शीतला और धर्मा की पूजा और श्रेष्ठता के लिए समर्पित थीं। रचनाओं के इस समुच्चय की एक और अनूठी विशेषता यह थी कि वे अक्सर एक ही नायक देवता में विशुद्ध रूप से दयालु और क्रूर रूप से अपकारी दोनों लक्षणों को दर्शाती थीं। ये कहानियाँ रोजमर्रा को जादुई और चमत्कार के साथ जोड़ती हैं, लेकिन वे धार्मिक प्रतिद्वन्द्विता, साहित्यिक, प्रयोगों, मौखिक विद्या, स्थानीय पक्षों के साथ एक सार्वभौमिक पौराणिक धर्म के मिलन के साथ–साथ बांग्ला भाषी क्षेत्रों में प्राकृतिक उपायानों, रोगाणुओं और औषधिय प्रथाओं के इतिहास को लिखने के लिए एक अमूल्य स्रोत है।

इस अवधि के दौरान साहित्य की एक और धारा विकसित हुई, जिसे कुछ हद तक भ्रामक रूप से मुसलमानी बांग्ला कहा जाता है, क्योंकि यह मुस्लिम कवियों द्वारा रचित था और इसमें फारसी अरबी मूल के शब्दों का व्यापक इस्तेमाल होता था और यह अधिकांश लेकिन अनन्य रूप से नहीं, सूफीवाद के विषय वस्तु के इर्द–गिर्द घूमता था। इन लेखकों में सबसे प्रमुख दौलत काजी थे। सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में चटगाँव में जन्में, उन्होंने अपने लेखन के अधिकांश वर्ष अराकान क्षेत्र (म्यामार में) बिताए जहां स्थानीय दरबार ने बांग्ला साहित्य को संरक्षण दिया। उन्होंने बंगाली में लोरिक और चंदा के साथ–साथ मैना सती की लोककथाओं को प्रसिद्ध किया। अपने काव्य और संगीत कौशल के लिए और भी अधिक सराहना पाने वाले कवि प्रसिद्ध अलाऔल थे और वह भी आराकानी दरबार में पहुँचे। अलाऔल ने बांग्ला में कई फारसी और अवधी सूफी रचनाओं (जायसी की पद्मावत सहित) को प्रस्तुत किया और भाषा को समद्ध किया। उस समय के एक अन्य महत्वपूर्ण लेखक सईद सुल्तान थे, जो सत्रहवीं शताब्दी के इस्लामी विद्वान थे और जिन्होंने बांग्ला में पैगम्बर मोहम्मद की पहली जीवनी *नबीवंश* (पैगम्बर की वंशावली) लिखी थी।

2.3.3 गुजराती

गुजराती के पुराने रूपों में साहित्यिक रचनाएं संभवतः वर्तमान युग की बारहवीं शताब्दी में शुरू हुईं। बारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वज्रसेन सूरी द्वारा रासों शैली में रचित है *भारतेश्वरबाहुबलीघौर* नामक सबसे पुरानी रचना है हालांकि, पंद्रहवी शताब्दी की शुरुआत के समय ही गुजराती साहित्य अपने एक विशिष्ट रूप में सामने आता प्रतीत होता है। गुजराती में एक अन्य महत्वपूर्ण गैर सम्प्रदायवादी लेखक एक बहुप्रज्ञ जैन भिक्षु थे, जिन्होंने संस्कृत के साथ–साथ गुजराती में भी बड़े पैमाने पर लिखा था। उनका नाम समय सुन्दर था और उन्होंने अकाल पर एक कविता सहित लगभग पच्चीस गुजराती रचनाओं की रचना की। समय सुन्दर की एक दिलचस्प आदत यह थी कि उन्होंने हमेशा अपनी प्रत्येक कविता की अन्तिम पंक्तियों में वर्ष और रचना के स्थान का उल्लेख करने का ध्यान रखा। गुजराती कविता और गीतों के लिए एक विशिष्ट शैली के विकास में सत्रहवीं शताब्दी के भक्ति कवि अखो के योगदान को मौलिक माना जाता है। दिलचस्प बात यह है कि हालांकि, अखो ने गुजराती को संस्कृत के एक विकल्प के रूप में नहीं देखा, बल्कि केवल एक अनिवार्य पूरक के रूप में देखा, जिसके द्वारा संस्कृत के समृद्ध कोश को बड़े पैमाने पर लोगों के लिए सुलभ

बनाया जा सकता था। संस्कृत की सापेक्ष स्थिति और उपयोग और लोकप्रिय वाक्पद्धतियों पर उनके अन्य विचार हमें प्रारंभिक आधुनिक समय में भाषाओं की राजनीति को समझने में मदद करते हैं।

2.3.4 हिन्दी

अधिकांश अन्य भाषाओं की तरह हिन्दी को अन्य बोली के रूपों से सदियों से गढ़ा जा रहा था। अपने वर्तमान स्वरूप में हिन्दी संभवतः सोलहवीं शताब्दी के आस–पास उभरी जब इसे खड़ी बोली के नाम से जाना जाता था। 'हिन्दी' शब्द फारसी मूल का है और 'हिन्द' की भाषा को संदर्भित करता है, जिसे फारसी उपयोगकर्ता उत्तर भारत के रूप में समझते थे। दिल्ली के मशहूर कवि अमीर खुसरों ने उत्तर भारत की बोलियों को संदर्भित करने के लिए चौदहवीं शताब्दी की शुरुआत में हिन्दुई/हिन्दवी शब्द का इस्तेमाल किया था। उस समय, यह एक व्यापक शब्द था जिसका अर्थ था कई उत्तर भारतीय बोलियों में से कोई भी, जिन्हें बाद में अवधी, भोजपुरी, ब्रजभाषा, गुजराती, शौरसेनी, मालवी, राजस्थानी आदि के रूप में जाना जाने लगा। एक साहित्यिक माध्यम के रूप में, अवधी, गुजराती और ब्रजभाषा जैसी भाषाऐं स्पष्ट रूप से हिन्दी से पहले की है। दूसरे शब्दों में हिन्दी का पूर्व इतिहास वास्तव में इन अन्य भाषाओं का इतिहास है। हिन्दी अपने वर्तमान स्वरूप में अठारहवीं शताब्दी में मानकीकृत की गई और इसे उत्तर भारत में एक संपर्क भाषा के रूप में और साथ ही साथ गद्य और कविता में साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए अपनाया गया। अवधी, गुजराती, ब्रज आदि को हिन्दी की बोलियों के रूप में संदर्भित करना, यदि भ्रामक नहीं है, तो विडम्बना तो है ही। यह याद रखना भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि उर्दू भी हिन्दुई/हिन्दवी बोलियों से निकली और अपना व्याकरण, वाक्य–विन्यास और हिन्दी के साथ अपनी शब्दावली का एक बड़ा भाग साझा करती है। आज भी इस तथ्य के अलावा कि हिन्दी आमतौर पर देवनागरी लिपि में और उर्दू फारसी–अरबी लिपि के थोड़े से संशोधित संस्करण में लिखी जाती है, दोनों भाषाओं के बीच का अंतर फारसी/संस्कृत शब्दों की सापेक्ष मात्रा तक ही सीमित है।

स्वतंत्रता के पहले के दशकों में रामचन्द्र शुक्ल द्वारा कुछ हद तक भ्रामक वर्गीकरण के बाद, ऐसा माना जाता है कि हिन्दी का विकास क्रमिक रूप से भावनाओं (रसों) को दी गई प्रधानता के आधार पर काल विभाजन हुआ है। यानि वीरता या वीर गाथा का काल (चौदहवीं शताब्दी तक), भक्तिवाद या भक्ति का काल (सोलहवीं शताब्दी तक), परंपरावाद/अलंकरणवाद या रीति/श्रृंगार काल (अठारहवीं शताब्दी तक), अन्त में आधुनिक युग का प्रारंभ। खड़ी बोली के विकास के साथ ही आधुनिक हिन्दी भाषा को एक मानकीकृत साहित्यिक माध्यम के रूप में स्थायित्व का मिलना कहा जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि सत्रहवीं शताब्दी में आत्मकथाएँ (जैसे बनारसी दास की *अर्धकथानक*) भी पद्य रूप में रची गई थी। यह तथ्य है कि हिन्दी बड़ी संख्या में दीर्घ स्वरों की वजह से गीत रचनाओं के लिए ज्यादा उपयुक्त थी जितना ना संस्कृत और ना फारसी के इस्तेमाल करने से हो सकता था। कुछ इतिहासकार गुजराती भाषा के प्रारंभिक चौदहवीं–सोलहवीं शताब्दी के रूपों को आधुनिक हिन्दी के निर्माण के लिए महत्वपूर्ण मानते हैं लेकिन इस पर बहस जारी है।

कबीर, सूरदास, रहीम, तुलसीदास, रसखान (भक्ति परंपरा, सोलहवीं शताब्दी में) और केशवदास, भूषण और भिखारी दास (रीति परंपरा, सत्रहवीं शताब्दी) को हिन्दी के महत्वपूर्ण प्रारंभिक कवियों के रूप में देखा जा सकता है। हालांकि कई लोग रासों और चरित (जीवनी) ग्रंथों के कवियों को हिन्दी के पहले प्रारंभिक कवि मानेंगे जिन्होंने सोलहवीं शताब्दी से एक

या दो शताब्दी पहले लिखा था। हिन्दी को अब 'क्षेत्रीय' भाषा नहीं माना जाता है। भले ही यह राजभाषा या शासन की भाषा (यह भारत की राष्ट्रीय भाषा नहीं) है, यह अक्सर उत्तर भारत के विभिन्न क्षेत्रों के लिए एक लिंक संपर्क भाषा के रूप में काम करती है।

2.3.5 कन्नड़

कन्नड़ भाषा भारत की पहली देसी भाषाओं में से एक थी जिसने अपनी विशिष्ट साहित्यिक पहचान विकसित की थी। यह साहित्य शिलालेखों के साथ घनिष्ट रूप से विकसित हुआ, जैसा कि दसवीं शताब्दी में कन्नड़ के पहले महान कवियों, पंपा और रन्ना की रचनाओं में स्पष्ट है। ग्यारहवीं शताब्दी में, नारंगवर्मा ने संस्कृत में अपना पहला प्रमुख व्याकरण *कर्नाटकभाषाभूषणम,* नामक शीर्षक से लिखा। अगली पांच शताब्दियों में, कन्नड़ साहित्यिक संस्कृति को व्याकरण, दर्शन, महाकाव्य पुनर्लेखन, जैसे ब्रह्मंड विज्ञान और विभिन्न सम्प्रदायों (लिंगायत, शैव और वैष्णव) के भक्ति साहित्य ने समृद्ध बनाया। इस अवधि के दौरान कन्नड़ साहित्य पर जो प्रारूप हावी था, वह था केम्पू, यानि गद्य और कविता का मिश्रण।

सोलहवीं शताब्दी के अन्त से कन्नड़ साहित्य में अनेक दूरगामी विकास हुए। भले ही उस समय की सबसे सृजनात्मक रचनाऐं दरबारी संदर्भ से बाहर लिखी गई थीं, लेकिन केलाड़ी दरबार (1500–1763) और मैसूर दरबार (1610–1947) इस अवधि के दौरान कन्नड़ साहित्य के मुख्य संरक्षक बने। प्रेमकाव्य के प्रतीकों के माध्यम से दर्शन, आध्यात्मिकता और सौन्दर्य शास्त्र पर विकारों को व्यक्त करने की पुरानी प्रवृत्ति जारी रही। सोलहवीं शताब्दी में रत्नाकर वर्णी एक ऐसे लेखक थे, जिनकी पहचान मुख्य रूप से कामोत्तेजक साहित्य से हुई, भले ही वे अन्य विज्ञानों और विभिन्न धार्मिक परंपराओं के ग्रंथों के भी ज्ञाता थे। उन्होंने परिवक्व उम्र में वीर शैव धर्म अपनाया लेकिन अन्ततः पश्चाताप किया और एक जैन बन गए। उन्हें दोनों (बारहवीं शताब्दी) के लिंगायत सन्त और विभिन्न जैन देवताओं के लिए *बासावन्ना शतक* (सौ छन्दों का समुच्चय) पर ग्रन्थ लिखने का श्रेय दिया जाता है। सत्रहवीं शताब्दी में कन्नड़ के एक दिलचस्प बुद्धिजीवी और लेखन सर्वज्ञ थे। वह अपनी बुद्धि और व्यंग्य लेखन के लिए जाने जाते थे। सामाजिक असमानता (विशेष रूप से जातिगत) पर उनकी मूलगामी टिप्पणी कर्नाटक में कई आधुनिक प्रगतिशील आन्दोलनों के लिए प्रेरणा रहीं है।

उसी समय विभिन्न भाषाओं के श्री वैष्णव सम्प्रदाय के कवि वोडेयर दरबार में फले–फूले और एक दूसरे के साथ प्रतिस्पर्धा करते रहे, लेकिन अनेक प्रमुख कन्नड़ कवि संत घुमक्कड़ थे, जिनमें मुपिना सदाक्षरी, शिशुनला सेरिफ, नवलगुंडदा, नागालिंगयोगी और कड़ाकोलाड़ मदिवल्लपा शामिल थे।

2.3.6 मलयालम

आज हम जिस भाषा को मलयालम कहते है, वह केरल के आधुनिक प्रान्त की भौगोलिक सीमाओं के साथ मेल खाने वाले क्षेत्रों में प्रचलित विविध बोलियों के रूपों से निकली है। इस भाषा को इसका नाम और मानकीकृत व्याकरण केवल अठाहरवीं शताब्दी में मिला। हालांकि, इसमें गठनात्मक बोली रूप, 'पुरातन मलयालम', बारहवीं शताब्दी के बाद से धीरे–धीरे ऐतिहासिक परिदृश्य पर उभरे। इस क्षेत्र के लोग, अठारहवीं शताब्दी में मलयालम शब्द के प्रचलन से पहले, आमतौर पर इनमें से कुछ बोलियों को तमिल के रूप में संदर्भित करते थे, हालांकि ये उन नाम की भाषाओं से अलग थी जो पश्चिमी घाट के पूर्वी क्षेत्रों में प्रधान थी। केरल क्षेत्र के कुछ अन्य सम्बन्धित बोलियों के रूप, विशेषरूप से संस्कृत से अत्यधिक

प्रभावित थे और वे व्यापक शब्द 'मणिपरवलम्' के नाम से पहचाने जाते थे। इस साहित्यिक माध्यम के व्याकरण और काव्यात्मक परम्पराओं पर एक ग्रंथ की रचना चौदहवीं शताब्दी में *लीलातिलकम्* शीर्षक के नाम से की गई थी।

केरल की भाषा में सबसे पुरानी ज्ञात कविता तेरहवीं शताब्दी की *तिरूनीलामाला* है। यद्यपि बारहवीं शताब्दी की प्रसिद्ध रचना *रामचरितम्* (श्रीरामन् या श्री राम से संबंधित), जो रामायण के युद्धकांड का वर्णन करती हैं, वह भी केरल से है और उसकी भाषा तमिल के करीब है।

मलयालम भाषा और साहित्य के इतिहास में एक महत्वपूर्ण व्यक्ति धुनकाथु रामानुजन एजुथाचन हैं जो सोलहवीं शताब्दी में फले–फूले। उन्हें मलयालम भाषा को तमिल और संस्कृत से अलग इसका विशिष्ट स्वरूप और पहचान देने का श्रेय दिया जाता है। उनकी रचनाओं में अध्यात्म रामायण का एक मलयालम 'अनुवाद' और एक संक्षिप्त महाभारत शामिल हैं। मध्य युगीन काल में इतने सारे अनुवादों की तरह एजुथाचन का अध्यात्म रामायण का अनुवाद वास्तव में राम की कहानी का एक नया पुनर्लेखन था और इसलिए यह एक मूल रचना थी।

सोलहवीं शताब्दी के अन्य प्रसिद्ध मलयालम कवियों में मेल पुथुर नारायण भट्टातिरि और पंतानम् नामपुतिरि शामिल हैं। उनके संग्रहाकों (आमतौर पर ब्रिटिश प्रशासकों) द्वारा गाथा गीतों के रूप में वर्गीकृत बड़ी संख्या में अनाम् लोकगीतों की रचना उत्तर केरल में सोलहवीं–सत्रहवीं शताब्दी के दौरान की गई प्रतीत होती है।

सत्रहवीं शताब्दी उत्तरी केरल महाभारत की घटना पर आधारित चार नाटकों के एक समुच्चय – बकावधम्, कल्याणसौगन्धिकम्, किर्मिरवधम् और निवातककवाकलकेवधम् के लेखक महान नाट्ककार कोट्टायम थम्पुरन की रचनाओं का भी साक्षी था। सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में कौट्टारकर थम्पुरन द्वारा नृत्य रूप कथककली की उत्पत्ति के बाद, कई कथककली नाटकों की रचना की गई जिन्हें अट्टकथा कहा जाता है। उन्नयै वारयर (सत्रहवीं शताब्दी के अन्त–प्रारंभिक अठारहवीं शताब्दी) द्वारा *नल चरितम्* एक ऐसा नाटक था जो नल के चरित्र के इर्द–गिर्द घूमता था।

कई ईसाई मिशनरियों ने मलयालम भाषा और साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। फादर जॉन अरर्नेस्टस हैक्सीईन उर्फ अर्नोस पडीरी (1681–1732) एक ऐसे मिशनरी विद्वान थे जिन्होंने दो व्याकरण की रचनाएँ, दो शब्द कोश (मलयालम–संस्कृत और मलयालम–पुर्तगाली के) और बाइबल से संबंधित विषयों पर कई काव्य रचनाएँ लिखी, जिनमें *पुट्टेन पाना,* पुरानी बाइबल का एक संक्षिप्त सारांश और मलयालम में नई बाइबल शामिल हैं। प्रारंभिक आधुनिक मलयालम के एक और महान कवि थे कुकुन नाबियार (1700–1770), जो नृत्य पाठ के रूप थुल्लल के एक प्रतिपादक थे, और जिन्होंने कलाकारों द्वारा सुनाई जाने वाली कई काव्यात्मक कहानियां भी लिखी।

2.3.7 मराठी

मराठी देस भाषाओं में से सबसे पहली थी जिसे लिखा गया था और साथ ही साथ साहित्यिक रूप (इसका अपना कल्पनाशील साहित्य है) विकसित हो गया था। मराठी उस भू–सांस्कृतिक क्षेत्र में प्रचलित विविध बोली रूपों से उभरी, जिनकी भौगोलिक सीमाएँ वर्तमान महाराष्ट्र प्रान्त से बहुत भिन्न नहीं थी। कई अन्य 'क्षेत्रीय' भाषाओं की तरह, इसे मध्य युगीन काल में अपना विशिष्ट साहित्यिक रूप मिला। मराठी की पहली प्रमुख साहित्यिक रचनाएं तेरहवीं शताब्दी

में रची गई थीं, और इन प्रारंभिक रचनाओं में सबसे प्रतिष्ठित *लीला चरित्र* और *भावार्थ दीपिका* या *ज्ञानेश्वरी* थीं; यह किस्सों का यह पहला संग्रह था, जिसे महीम भट्ट द्वारा संकलित किया गया था, जो महानुभाव सम्प्रदाय के संस्थापक चक्रधर के व्यक्तित्व के इर्द–गिर्द घूमता है। वारकरी या भागवत सम्प्रदाय के संस्थापक ज्ञानेश्वर *भावार्थ दीपिका* (उर्फ *ज्ञानेश्वरी*) के लेखक थे, जो भगवद् गीता पर एक व्यापक काव्यात्मक टिप्पणी थी। इन काव्य रूपों का मराठी साहित्य पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि सदियों बाद भी इनका अनुकरण किया जाता रहा, उदाहरण के लिए सोलहवीं शताब्दी के अन्त और सत्रहवीं शताब्दी की शुरुआत में फॉदर थॉमस स्टीफेन्स के *क्रिस्टा पुराण* में मराठी के शुरुआती कवियों में जनबाई (तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी) और एकनाथ (1533–1599) का उल्लेख होना चाहिए। जन बाई नामदेव की पहली अनुयायी थी और गंगा खेड़ा की एक शूद्र कवयित्री थी, जिन्होंने 350 से अधिक कविताओं (अभंगों) की रचना की थी। दूसरी ओर पैठण के संत एकनाथ अपनी *चतुश्लोकी भागवत*, *एकनाथी भागवत*, *भावार्थ रामायण* और *रूक्मिणी स्वयंवर* के लिए जाने जाते थे।

सबसे प्रसिद्ध प्रारंभिक आधुनिक भक्ति संतों में निम्न जाति में जन्में' कवि, तुकाराम (1608–1650) थे। जिन्होंने मराठी में अपने गीत लिखे थे। उनके अभंग जो अपने तीव्र जोशीले उच्च स्वर में गाये जाने के लिए जाने जाते हैं और आज भी गाये जाते हैं। तुकाराम के समकालीन रामदास (1608–1681) तुलनीय साहित्यिक प्रतिभा और रहस्यमय जुनून के व्यक्ति थे। उन्होंने एक सम्प्रदाय की स्थापना की, जो राम और हनुमान की भक्ति पर केन्द्रित था, और आध्यात्मिक व भौतिक जरूरतों के साथ–साथ सांसरिक और सांसरिक से परे की आकांक्षाओं के बीच संतुलन की आवश्यकता पर जोर देता था।

शिवाजी राजे के पत्र, विशेष रूप से वे जो उन्होंने सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में अपने सैन्य कमांडरों (और अपने एक भाई एक्कोजी को) लिखे थे, इस अवधि के दौरान मराठी गद्य के बेहतरीन नमूने हैं और उनमें फारसी और संस्कृत दोनों के शब्द है। शिवाजी ने मराठी शब्द कोशों के लेखन को भी संरक्षण दिया और भाषा के मानकीकरण में योगदान दिया। सत्रहवीं शताब्दी के अन्त में सभासद (पूरा नामः द्रिशन जी अनन्त सभासद) द्वारा लिखित ऐतिहासिक इतिवृत जिसका शीर्षक *शिवाजी राजे वांची भाखर* है, इस क्षेत्र का अपनी तरह का पहला ग्रंथ है। मराठी लेखकों ने पुराणों और महाकाव्यों जैसी कई पारंपरिक संस्कृत शैलियों का भी अनुकरण किया। प्रसिद्ध श्रीधर (1658–1729) ने *हरिविजय*, *राम विजय*, *पांडव प्रताप* और *शिवलीलामृत* सहित कई ऐसे ग्रंथों की रचना की।

हालांकि, मराठी की साहित्यिक कृतियाँ उपरोक्त विवरण से अधिक विविध थी। यह प्रारंभिक आधुनिक काल में कुछ क्षेत्रीय भाषाओं में से एक थी, जिसे राजनैतिक ग्रन्थ लिखने के लिए भी अपनाया जाने लगा था। ऐसा प्रसिद्ध ग्रंथ संभाजी द्वितीय के अनुरोध पर रामचन्द्र नीलकंठ अमात्य द्वारा लिखा गया, *आज्ञापत्र* था।

2.3.8 ओडिया

पूर्वी क्षेत्रों अर्थात् ओडिया, बंगाल और असम के वर्तमान प्रान्त की बोली रूप एक साथ विकसित हुए और उनमें बहुत कुछ साझा था भले ही उनमें क्रियाओं के अन्त और व्याकरण में भिन्नताएँ थीं। ओडिया के पुरातन रूप के जो अलग–अलग निशान हो सकते है, उनमें सबसे शुरुआती ग्रन्थ चौदहवीं शताब्दी के अस्तित्वमान हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण अज्ञात लेखक द्वारा लिखा गया श्रीशिशु वेद है, जो नाथपंथ की स्पष्ट छाप वाला एक ग्रन्थ है। इस

अवधि का एक अन्य नाथ पंथी ग्रन्थ, *अमरकोश* एक उपदेशक (आदिनाथ) और उनके शिष्य लोई के बीच वार्तालाप के रूप में लिखा गया था।

हालांकि, ओडिया साहित्य आमतौर पर पंद्रहवी–सोलहवीं शताब्दी में सरलादास, बलरामदास और जगन्नाथ की महाकाव्य रचनाओं के साथ परिपक्व और विशिष्ट रूप प्राप्त करता है। सरलादास की ओडिया महाभारत, बलरामदास की *जगमोहन रामायण* और *लक्ष्मी पुराण*, जगन्नाथ दास की *भागवत्* को ओडिया साहित्य के प्रारंभिक शास्त्रीय ग्रन्थ माना जाता है। भले ही उनकी रचनाएँ महाकाव्य और पौराणिक कथाओं पर आधारित थीं, इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह केवल अनुवाद नहीं थे, बल्कि बहुत ही सृजनात्मक रूप से कल्पना किये गए साहित्यिक पुनर्लेखन थे। देव दुर्लभ दास की *रहस्य मंजरी* (राधा और कृष्ण पर केन्द्रित), और गोपीनाथ दास की *बुद्धी ओशा*, *खुदुरूकुनी* और *गोविन्द विलास* के बारे में भी यही कहा जा सकता है। इस क्षेत्र के सोलहवीं शताब्दी के एक बहुपज्ञ कवि विष्णुदास थे, जिन्होंने कई काव्य और चौतिशों की रचना की थी।

रामायण और महाभारत के प्रसंगों पर वर्णनात्मक कविताओं की रचनाओं का चलन सत्रहवीं शताब्दी तक जारी रहा। मछुआरे कवि भीमा धिबर का *कपटपास* महाभारत पर आधारित था और आज भी लोकप्रिय है। सत्रहवीं शताब्दी के एक अन्य प्रतिष्ठित ओडिया कवि दीना कृष्ण दास थे, जिनकी शैली की तुलना ग्यारहवीं शताब्दी के महान संस्कृत कवि जयदेव से की जाती है। उन्हीं की तरह, दीनाकृष्ण के छंद गीतात्मक तरीकों से ग्वालिनों के साथ कृष्ण के प्रेमशील खेल का वर्णन करते हैं। दीना कृष्ण के एक समकालीन धनन्जय भांजा थे, जो एक राजकुमार और कवि थे, जिन्होंने *मदन भंवरी*, *त्रिपुरा मंजरी*, *रघुनाथ विलास* और *इच्छाबिति* आदि अपनी रचनाओं के साथ सर्जनात्मक गतिविधियों में नाम कमाया।

2.3.9 पंजाबी

पंजाबी की उत्पत्ति को अक्सर प्रारंभिक मध्ययुगीन प्राकृत और अपभ्रंश की शौरसेनी धारा से रेखांकित किया जाता है। जबकि फारसी साहित्य में यह सुझाव देने के पर्याप्त सबूत हैं कि पंजाब के वाक् रूप में अपनी स्वयं की बोली थी और कम से कम बारहवीं शताब्दी से इसमें मौखिक लोक रचनाएँ थीं, हालांकि पंजाबी का सबसे पहला लिखित उदाहरण *आदि ग्रन्थ* या गुरू अर्जन देव (सिख धर्म के पांचवें गुरू) द्वारा 1604 में *गुरू ग्रंथ साहिब* का संकलन किया जाना था। चूंकि यह एक पवित्र ग्रन्थ था, इसका मूल संस्करण बिना किसी परिवर्तन के हमें प्राप्त हुआ है। दिलचस्प बात यह है कि *आदि ग्रंथ* में सबसे पुराने छंद खोतवाल के शेख फरीदुद्दीन मसूद (1265) के गीत हैं जिनकी शिक्षा मुल्तान और दिल्ली में हुई थी, और जिन्होंने अपना अधिकांश लेखन काल पाक पट्टन में बिताया था। ईश्वर के प्रति प्रेम के उनके पंजाबी गीत, पंजाबी में लिखित साहित्य के सबसे पुराने मौजूद नमूने, इतने मधूर थे कि उन्हें गंजशकर या 'मिठास का खजाना' का नाम मिला।

पंजाबी के सबसे मशहूर प्रारंभिक कवियों में सिख गुरू थे, जिनकी शुरुआत स्वयं गुरू नानक देव (1469–1539) से हुई थी। एक बच्चे के रूप में उन्हें उनके गांव के एक ब्राह्मण और एक काजी दोनों ने पढ़ाया था। भक्ति और दार्शनिक दोनों विषय–वस्तुओं पर ध्यान केन्द्रित करने वाले उनके प्रभावशाली और अत्यन्त गीतात्मक छंद *आदि गंथ* के मूल में हैं, और भाषा के विकास पर सबसे बड़ा प्रभाव हैं। गुरू अमरदास (1479–1574) और गुरू रामदास (1534–1581) के भक्ति गीत पंजाबी के अधिक बोलचाल वाले संस्करणों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो

गीतात्मक पद पर बहुत प्रभाव डालते हैं। गुरू अमरदास की सबसे प्रसिद्ध लंबी रचना *आनंद* थी, और वह अभी भी बहुत लोकप्रिय हैं। गुरू रामदास के गीतों को अनुप्रास अलंकार और ध्वनि अनुकरणात्मक जैसे शास्त्रीय साहित्यिक उपकरणों के सौन्दर्यपूर्ण रूप से मनभावन परिनियोजन द्वारा भी चिन्हित किया जाता है। सोलहवीं शताब्दी के अन्य कवियों में दामोदर गुलाटी (पहले लेखक जिन्होंने हीर–रांझा लोककथा को वर्णनात्मक गीतों में लिखा है) और गुरू अर्जन देव (1563–1606) शामिल हैं जिनकी *सुखमणी* (मन की शांति), *बावन अखरी* (बावन काव्य पत्र), और *बारह माह* (बारह महीने) को अभी भी पंजाबी साहित्य की उत्कृष्ट कृतियाँ माना जाता है।

सिख गुरूओं से अलहदा भाई गुरूदास (1558–1637) का योगदान सबसे आगे है। वह एक बहुभाषाविद् होने के साथ–साथ एक कवि भी थे, और उनके गीत भक्ति और धर्म निरपेक्ष विषय–वस्तुओं की एक श्रृंखला के इर्द–गिर्द घूमते हैं। वे आध्यात्मिक आकांक्षाओं को प्रतिबिंबित करते हैं, लेकिन समकालीन समाज के सांसरिक' सरोकारों को भी दर्शाते हैं। एक अन्य बहु–भाषा विद् कवि, एक सूफी गुरू सुल्तान बहु (सोलहवीं शताब्दी के अन्त या सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में) थे, जिन्होंने अपने पंजाबी गीतों की रचना छवैया छंद में की थी। वास्तव में कई सूफी और अन्य मुस्लिम लेखकों ने प्रारंभिक आधुनिक काल में अपनी सृजनात्मक प्रतिभा के साथ पंजाबी साहित्य के संग्रह को समृद्ध किया। शाह हुसैन (1538–1601), हाफिज बरखुरदार (सत्रहवीं शताब्दी) और बुल्ले शाह (1680–1757), वारिस शाह (अठारहवीं शताब्दी) उनमें से प्रमुख हैं। पंजाबी साहित्य की लगभग एक शैली, एक सम्मानित श्रेणी, जन्म सखियों या गुरू नानक देव के जीवनी संबंधी वर्त्तान्त थे। प्रारंभ आधुनिक काल के इन ग्रन्थों में से कई हमारे पास आए हैं और उन्हें आमतौर पर *पुरातन जन्मसखी*, *मेहरबान जन्मसखी*, *बाल जन्मसखी* और *मणि सिंह जन्मसखी* के रूप में वर्गीकृत किया गया है।

2.3.10 तमिल

अनेक कारण है कि तमिल साहित्य को विशेष रूप से युगीन का उपमहाद्वीप की 'क्षेत्रीय' साहित्यिक परंपराओं के साथ नहीं जोड़ा जाना चाहिए। एक तो यह, कि एक बोली के रूप में या लिखित रचनाओं के लिए एक सृजनात्मक माध्यम के रूप में, तमिल एक भू–सांस्कृतिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं थी। तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक में दक्षिण भारतीय स्थानों से लेकर श्रीलंका और दक्षिण पूर्व एशियाई द्वीप समूह तक तमिल की दुनिया बहुत व्यापक और बहुस्थानीय थी। दूसरे, ईसाई युग की प्रारंभिक शताब्दियों तक पहले से ही (और क्षेत्रीय भाषाओं के संस्कृत और फारसी के संपर्क में आने के बाद उनके साहित्यिककरण होने से बहुत पहले), तमिल धार्मिक और धर्मनिरपेक्ष दोनों तरह की साहित्यिक रचनाओं के एक समृद्ध संग्रह पर गर्व कर सकती थी।

तमिल के सबसे प्रसिद्ध मध्यकालीन कवि कम्बन (उर्फ कवि चक्रवर्ती) थे, जिन्होंने लगभग नौंवी शताब्दी में तमिल में रामायण की रचना की थी। (कुछ विद्वान इसे बारहवीं शताब्दी का मानते हैं)।

कंबन और सोलहवीं शताब्दी के अन्त के बीच की अवधि के कुछ प्रसिद्ध कवियों में सेक्किलार (*पेरियियूपुरम* के लेखक, ग्यारहवीं–बारहवीं शताब्दी) अव्वययार एक सामान्य नाम जिसके द्वारा (ग्यारहवीं–चौदहवीं शताब्दी की कई कवयित्री जानी जाती थी), कल्लाद्नार (*कल्लाद्म* के बारहवीं शताब्दी के लेखक), जेयनकोंतार (*कलिगंटटु परानी* के बारहवीं शताब्दी के लेखक), मेकंदर (तेरहवीं शताब्दी के शैवग्रंथ *शिव ज्ञान बोधम* के लेखक), पुकलेंती (तेरहवीं

शताब्दी के एक अन्य कवि, *नलवेनपा* के लेखक), पत्तीनटार और विल्लीपुतुत्तरार (दोनों चौदहवीं शताब्दी से,) पंपत्ती सिथार और पलपट्टाटाई चौखनाथपुलवर (दोनों पंद्रहवीं शताब्दी), और अंतवीरराम पैन्टियन (सोलहवीं शताब्दी के अन्त में) शामिल थे। उन्होंने जिन विषय वस्तुओं पर लिखा उनमें रामायण और महाभारत या उनकी घटनाएँ), पौराणिक कहानियों, लोककथाओं, अनुष्ठान इत्यादि का पुनर्लेखन शामिल था।

सत्रहवीं शताब्दी के सबसे प्रमुख तमिल साहित्यकारों में से एक संत कुमारगुरूपरार थे, जो मीनाक्षी, चिदाम्बर और सरस्वती जैसे विभिन्न देवी–देवताओं को समर्पित कई भक्ति गीतों/छन्दों के गायक और संगीतकार थे। सत्रहवीं शताब्दी के एक अन्य विद्वान कवि ऐल्लाकियामनवलदासर (उर्फ पिल्लई मेरूमल अयंकर) थे। जिन्होंने आठ प्रबंध काव्य (परिमित वर्णनात्मक कविताओं) की रचना की, अर्थात् *तिरूवंरगटटु अतांती, तिरूवंरगाटटु मलाई, तिरूवरंगक्लाम्पगम, श्रीरंगनायकर ओसल, तिरूवेणकाडमलाई, तिरूवेणकाडडटु अतांती* और *नुरेटटुर तिरूपत्ति अंताती*। धर्मपुरम् के एक शैव मठ के संस्थापक गुरू ज्ञान संमदर (सत्रहवीं शताब्दी) भी कोई कम बहुप्रज्ञ और लोकप्रिय नहीं थे जिन्होंने *चौककंता कल्लितुराई, ज्ञान पिराक्स मलाई, नवरतन मलाई, दास कारय एहावल, मुक्ति नीचयम* और *शिवभोगसारम्* की रचना की। उनके समकालीन संत परानज्योति ने भगवान शिव (सुंदरेश्वर) की अलग–अलग चौसठ लीलाओं को दर्शाते हुए *तिरूवेल्लयाताल पुराणम* की रचना की। इस अवधि के एक अन्य शैव संत ऐल्लप्पा नवलार थे, जिन्होंने *अरूणाचलपुरम, तिरूविरीन्जयपुराणम, तीर्थगिरि पुराणम, तिरूवेंकटुपुरवम, ऐवन्थीपुरणम्* आदि जैसे कई स्थल पुराणों की रचना की।

अठारहवीं शताब्दी के तमिल कवियों में, *समुद्र विलासम् मथन विथार मलाई, तिरूवित्तई मरूधर अंताती* और *कुमारज मंजरी* जैसे ग्रंथों के लेखक कटिकाई मुटटु पुलावर का उल्लेख किया जाना चाहिए। अंबालवनक कवि रायर और शिवज्ञान मुनिवर भी कम महत्वपूर्ण नहीं थे। पहले *अरपल्लीश्रवराष्ट्रकम्* के लेखक थे जबकि दूसरे ने *शिवज्ञान मापादियम* लिखा था। यह दिलचस्प है कि सत्रहवीं शताब्दी के अन्त और अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभ के ग्रंथों में सामाजिक आचरण को विनियमित करने के बारे में प्रत्यक्ष तौर पर सरोकार प्रतीत होते हैं।

2.3.11 तेलुगू

तेलुगू साहित्य का लगभग एक हजार वर्षों का सतत् इतिहास है। अधिकांश अन्य 'क्षेत्रीय' भाषाओं और साहित्यिक संस्कृतियों की तरह, तेलुगू साहित्य भी शुरू से ही कई अन्य भाषाओं विशेष रूप से संस्कृत, तमिल और कन्नड़ के प्रभाव में विकसित हुआ। फारसी प्रभाव भी सोलहवीं शताब्दी के बाद से चिन्हित हो जाता है। अन्य देश भाषाओं (स्थान की भाषा) के मामले के विपरीत, हालांकि ग्यारहवीं शताब्दी के तेलुगू के लेखक एक ऐसी भाषा में लिखने के प्रति सचेत थे जो इसकी पड़ोसी भाषा से भिन्न थी और उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि वे तेनुगू/तेलुगू में लिख रहे थे। तेलुगू के पहले प्रतिष्ठित कवियों में से एक नान्निया थे जो ग्यारहवीं शताब्दी में फले–फूले। तेलुगू साहित्य की अन्य प्रारंभिक प्रतिभाएं नन्कोडुडु (बारहवीं शताब्दी) और तिक्काना (तेरहवीं शताब्दी) थे।

मध्यकाल में तेलुगू के सबसे प्रसिद्ध लेखकों में विजयनगर के प्रसिद्ध शासक कृष्ण देव राय (शासन काल 1509–1529) थे, जिन्होंने *अमुक्त माल्यदा* नामक एक राजनैतिक ग्रंथ (राजा के लिए एक सलाह पुस्तक) लिखा था। कृष्ण देव राय के समकालीन और उनके दरबार में एक पुरस्कार विजेता कवि अललासानी पेदाना थे जिन्होंने मार्कण्डेय पुराण की कहानी पर

एक वर्णनात्मक कविता लिखी थी जिसका शीर्षक *स्वरोकिशा संभव* या *मनुचरित्र* था। सोलहवीं शताब्दी के अन्य प्रमुख लेखकों में धुरजाति, तेनाली रामकृष्ण कवि (उर्फ विकट कवि या तीक्ष्ण बुद्धि/शरारती कवि), और पिंगली सुराना शामिल हैं। धुरजाति *श्रीकालहस्तीक्षर महामत्यमयू* और *श्रीकालहस्तीक्षवर सतकामू* (भगवान शिव को समर्पित) के लेखक थे। तेनाली रामकृष्ण की रचनाओं *उद्भबताराध्याय चरितमु* और *पांडुरंग महामत्यमयु* शामिल हैं। पिंगली सुराणा बहुपज्ञ होने और काव्य के विभिन्न रूपों के साथ प्रयोग करने के लिए जाने जाते थे। उनका *राघव पांडू वियामु* अपने समय का एक अनुठा ग्रंथ था, क्योंकि इसे रामकथा और महाभारत दोनों की तरह पढ़ा जा सकता था।

सत्रहवीं शताब्दी में तेलुगू के सबसे बहुपज्ञ कवि शायद क्षत्रेप्य (1600–1660) थे। उन्हें *मुवा गोपालपदमुल* के नाम से जानी जाने वाली चार हजार कविताओं की रचनाओं का श्रेय दिया जाता है, जो भगवान कृष्ण की अपनी प्रेयसियों के साथ प्रेमलीला पर केन्द्रित थीं। सत्रहवीं शताब्दी के एक अन्य कवि गायक – रामदासु (उर्फ कंचरेला गोपालन्ना थे), जिनके भक्तिगीत *रामदासु कीर्तनलु* के शीर्षक से संकलित हैं और आज भी लोकप्रिय हैं।

2.3.12 उर्दु

ओरदु या उर्दु शब्द का अर्थ एक सैन्य शिविर, या एक शाही महल या तुर्की में एक किला है। भारत में फारसी ग्रन्थों में, हालांकि, यह एक साम्राज्य या एक राजधानी–शहर को संदर्भित करती है। यह लोकप्रिय धारणा कि उर्दु सैन्य शिविरों में उत्पन्न हुई थी या यह कि दक्कन उर्दु का मूल उद्‌गम स्थान था, विद्वानों ने इस धारणा को तोड़ दिया है। यद्यपि यह भाषा कम से कम तेरहवीं शताब्दी से दिल्ली और उसके आस–पास बोली के रूप में (हिन्दवी/देहलवी के रूप में जानी जाने वाली) मौजूद थी। यह केवल अठारहवीं शताब्दी में है कि हम इसका वर्णन करने के लिए 'उर्दु' शब्द के इस्तेमाल का पहला साक्ष्य देखते हैं। अलग–अलग समय और सन्दर्भों में, इसे हिन्दवी, हिन्दुई, हिन्दी रेख्ता, देहलवी आदि जैसे कई नामों से जाना जाता था। दक्कन में इसका एक संस्करण पंद्रहवीं शताब्दी के बाद से दक्कनी के नाम से जाना जाता था।

उर्दु और हिन्दी दोनों का व्याकरण और वाक्य विन्यास तेरहवीं शताब्दी में दिल्ली शहर और उसके आसपास के दैनिक बोली के रूपों पर आधारित था। यही वह भाषा थी जिसे बाद में खड़ी बोली के नाम से जाना जाने लगा। वास्तव में आधुनिक हिन्दी और आधुनिक उर्दु एक ही भाषायी और साहित्यिक परंपरा की दावेदार हैं। हिन्दवी का साहित्यिक रूप में सबसे पहला संदर्भ लाहौर के फारसी कवि मसूद शाद सलमान (1046–1121) से मिलता है, जिन्होंने हिन्दवी में एक दीवान (छन्दों का संग्रह) की रचना करने का दावा किया था। अमीर खुसरो (1253–1325) को व्यापक रूप से उर्दु/हिन्दी के पहले प्रमुख कवि के रूप में मान्यता प्राप्त है, हालांकि साहित्यिक अभिव्यक्ति का उनका पसंदीदा माध्यम फारसी था, और यह केवल दोस्तों के साथ महफिलों के लिए उन्होंने हिन्दवी (या 'उर्दु') में छन्दों की रचना की। फिर भी प्रतीत होता है कि उर्दु केवल पंद्रहवीं शताब्दी तक, दिल्ली के सूफी कवि, बन्दा नवाज जेसुदाराज के उदय के साथ, जो तैमूर के आक्रमणों के बाद गुलबर्ग में बस गए थे, उस समय सृजनात्मक अभिव्यक्ति के लिए स्वीकार्य माध्यम बन गई थी। बुरहानुद्दीन जानम (मृत्यु 1582) ने *असररूल–वजूद* और *कलिमात–उल–हकाईक* को लिखा, जिनमें से बाद वाले को उर्दु गद्य का सबसे पुराना नमूना माना जाता है।

उत्तर भारत के हिन्दवी ('उर्दु') के शुरुआती प्रमुख लेखकों में से मोहम्मद अफजल (मृत्यु 1625) एक थे, जिनकी *बिकट कहानी* बारह मासा शैली की थी, जो संस्कृत साहित्यिक परंपरा की एक शैली थी, जिसमें कवि वर्ष के बारह महीनों (बारह मास) के दौरान अपने प्रेमी के लिए एक स्त्री की चाहत की विभिन्न मनोदशाओं का वर्णन किया जाता था। एक अन्य कवि जिन्होंने साहित्यिक अभिव्यक्ति के लिए इस भाषा को अत्यधिक सम्मानित विकल्प के रूप में स्थापित करने में मदद की, वह खूब मोहम्मद चिश्ती (1614) थे, जिन्होंने गहराई से दार्शनिक/रहस्यवादी विचारों द्वारा चिन्हित नैतिकता पर *खूब तरंग*, एक मसनवी (वर्णनात्मक कविता) लिखी थी।

हालाँकि इस अवधि के दौरान बड़ी संख्या में उर्दु के 'महान' कवि दक्कन क्षेत्र से आए थे। गोलकुंडा के पाँचवे कुतुबशाही शासक, मोहम्मद कुली कुतुबशाह (मृत्यु 1611) ने स्वयं हजारों दोहे लिखे जो उर्दु की नाजुक और असरदार दक्कनी शैली के लिए जाने जाते थे। दक्कन के एक अन्य शासक, बीजापुर के अली आदिल शाह द्वितीय (मृत्यु 1672) और भी अधिक बहुपज्ञ थे और उन्होंने कसीदों, मर्सियों, मसनवी और कवित की रचना की। बीजापुर के दरबार द्वारा संरक्षित एक कवि सनाती थे, जिन्होंने एक वर्णनात्मक कविता *किस्सा–ऐ–बेनज़ीर* की रचना की थी। इतने ही मशहूर गोलकुंडा के एक दरबारी कवि, इब्न–ए–निशाती थे जिन्होंने *फूलबान* या 'गार्डन ऑफ फ्लावर्स' (सत्रहवीं शताब्दी के मध्य) के शीर्षक से एक मसनवी की रचना की, जो रोमांच, प्रेम और लालसा की एक कहानी है लेकिन इसमें समकालीन सामाजिक जीवन के काफी विवरण हैं। मुल्ला असदुल्ला वाझी (मृत्यु 1659) सत्रहवीं शताब्दी दक्कन के एक और लेखक थे जिन्होंने उर्दु साहित्यिक संग्रह की बढ़ती प्रतिष्ठा में योगदान दिया। उनकी रचना *कुतुब मुश्तानी* (1609) एक मसनवी के रूप में एक प्रणेय कविता थी, और उनकी गद्य रचना *सब रस* (1635) रहस्यवाद की एक अधिक परिपक्व रूपक संबंधी वत्तांत थी। सत्रहवीं शताब्दी में आदिलशाही दरबार के एक अन्य प्रभावशाली कवि मोहम्मद नुसरत नुसरती थे जिन्होंने मसनवी, गजल और कसीदों की रचना की थी। *गुलशन–ए–इश्क* (1657) नामक मधुमती और मनोहर की कहानी के उनके पुनर्लेखन को उर्दु साहित्य के इतिहास का एक शास्त्रीय ग्रंथ माना जाता है।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्य महत्वपूर्ण लेखकों में मियाँमीर हाशमी और अब्दुल कादिर बेदिल शामिल हैं। अठारहवीं शताब्दी उर्दु के अभूतपूर्व प्रस्फूटन का काल था। इस समय सैयद अब्दुल वली उजलत (1693–1775), ने *बारह मासा, रागमाला* और *साकीनामा* जैसे ग्रंथों को लिखा, और सैयद सदरूद्दीन मोहम्मद खान फैज (1690–1738) ने अपने दीवानों की रचना की। उत्तर भारत में, जफर जतल्ली जैसे अन्य लोग अपनी तीक्ष्ण बुद्धि और व्यंग्यात्मक गजलों से लोकप्रिय हो गये, और अकबराबाद और ग्वालियर के प्रसिद्ध फारसी विद्वान, सिराजुद्दीन अली खान आरजू (उर्फ खान–ए–आरजु) ने दिल्ली और लखनऊ में उर्दु की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए काम किया। वास्तव में, अठारहवीं शताब्दी में कई कवियों के साथ–साथ उर्दु के विद्वानों का उदय हुआ। महान कोशकार टेकचन्द देहलवी बहार (1687–1766), ने *बहार–ए–आजम* नामक उर्दु का एक शब्दकोश लिखा। इस काल के कई अन्य ग्रन्थ आज भी उर्दू साहित्य के क्लासिक माने जाते हैं। उनमें से हमें मीर गुलाम हसन (1735–86) की *मसनवी सेहर–उल–बयान* को एक मानना चाहिए। हसन के समकालीन चन्द्रभान ब्राह्मण और राजा रामनारायण मौजूं अपनी शानदार गजलों के लिए प्रसिद्ध हुए। सैयद फजल–ए–अली फाजली की *करबला कथा, रोजत–उश–सोहदा* का अनुवाद उर्दु गद्य

का एक अनुकरणीय नमूना माना जाता है। जहाँ तक कसीदा (प्रशस्ति) और हज्व (व्यंग) का संबंध है, मिर्जा मोहम्मद रफी सौदा (1713—1780) की गणना महान कवियों में की जाती है।

हालांकि, मीर मोहम्मद तकी मीर (1722—1810) को उर्दु का सबसे महान कवि माना जाता है, जिनकी तुलना शायद उन्नीसवीं शताब्दी के महान मिर्जा असदुल्ला खान गालिब से ही की जा सकती है। सिराजुद्दीन अली आरजु के शिष्य मीर ने फारसी में उर्दु कवियों का एक आलोचनात्मक तजकिरा (जीवनी शब्द कोश) संकलित किया। उनकी अपनी कविताओं का पहला संग्रह लगभग 1752 में आया। मीर को उर्दु कविता के विभिन्न शिल्पों के साथ भावनाओं और विचारों की गहनता की महारत के लिए, जो उनके छन्दों में व्याप्त हैं, सराहा जाता है।

बोध प्रश्न 2

1) देसी भाषा की साहित्यिक परंपराओं की विविधता सोलहवीं—अठारहवीं शताब्दी में भारतीय उपमहाद्वीप की पहचान थी। टिप्पणी लिखिए।

....

....

....

....

2) हमें मध्यकाल के तमिल साहित्य को क्षेत्रीय के रूप में क्यों वर्गीकृत नहीं करना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।

....

....

....

....

3) निम्नलिखित को परिभाषित कीजिएः

क) बुरांजी

....

....

....

ख) अभंग

....

....

....

ग) रासो और चरित

....

....

....

....

2.4 यात्रा वृत्तांत

यात्रा के उत्सुक, तीर्थ यात्री, राजनीतिक दूत, मिशनरी, व्यापारी आदि के रूप में यात्री प्राचीन काल से भारतीय उपमहाद्वीप का दौरा करते रहे हैं। वर्तमान युग की मध्य शताब्दियों तक उपमहाद्वीप को अपार सम्पदा, अनोखे परिदृश्य, प्राकृतिक संपदा और कुशल शिल्पों की भूमि के रूप में देखा जाने लगा था। इस कारण से और साथ ही साथ स्थल और महासागरों के माध्यम से आवागमन के उन्नत साधनों के कारण, भारत ने हमारे अध्ययन की अवधि के दौरान बड़ी संख्या में आगन्तुकों को आकर्षित किया। कुछ व्यक्ति दुस्साहसी थे, जिन्होंने अजीब और अनोखे देशों को देखने की ललक के लिए यात्री की। दूसरे एक दूरस्थ राज्य द्वारा भेजे गये राजनयिक मिशन पर थे। कुछ व्यापार के लिए विशेषाधिकार प्राप्त करने की संभावनाओं का पता लगाने के लिए आए, जबकि अन्य ऐसे लोगों की तलाश में आए, जिन्हें वे अपने धर्म में परिवर्तित कर सकते थे, यानि वे जिसे सच्चा धर्म या विश्वास मानते थे। यदि कुछ एक ही स्थान पर कुछ सप्ताह के लिए रहे, तो अन्य ने अपना आधा जीवन इस देश में रहकर व्यतीत किया। स्पष्ट रूप से यात्रियों के परियोजन, कर्त्ता की स्थिति, साथ ही साथ उनकी सामाजिक और व्यावसायिक पृष्ठभूमि भिन्न–भिन्न थीं।

बड़ी संख्या में यात्रियों ने यहाँ अपने अनुभव के लिखित रिकॉर्ड छोड़ दिये हैं। ये लेख हमें विभिन्न रूपों में उपलब्ध हैं। कुछ ने यात्रा वृत्तांत लिखा और अन्य ने मित्रों और वरिष्ठों को पत्र लिखे, जबकि वे अभी भी भारत में यात्रा कर रहे थे। उनका लेखन जहाँ कहीं भी बचा रहा, वह इतिहासकारों के लिए सूचना का अद्वितीय स्रोत है। यात्रा साहित्य में उपलब्ध जानकारी सामाजिक रीति–रिवाजों, शहरी वास्तुकला, सांस्कृतिक मूल्यों, राजनैतिक परंपराओं, जलवायु और परिदृश्य के साथ–साथ भारत के विभिन्न भागों में पक्षियों, जानवरों और पौधों सहित विभिन्न प्रकार के मुद्दों और विषय वस्तुओं से संबंधित है।

चूंकि आगन्तुकों ने शासन कर रहे राजाओं को अपने संरक्षक के रूप में नहीं देखा था, इसलिए उनके वृत्तांत दरबार के उन इतिवृतों के लिए आवश्यक 'दोष निवारक' की भूमिका अदा करते हैं, जो नियमित रूप से और अतिश्योक्तिपूर्ण रूप से अपने शासकों की प्रशंसा करते हैं और उनके साम्राज्यों में कभी भी कुछ भी गलत नहीं देखते। शासकों को खुश रखने की आवश्यकता से मुक्त यात्रा वृत्तांत कठोर कम और रंगीन अधिक थे। वास्तव में यात्रा लेखक अक्सर नदियों और पहाड़ों, राजाओं और भद्रजनों के शिकार अभियानों, अकाल के समय भयंकर अभावों, वनवासियों द्वारा प्रतिरोध और सम्प्रभु शासकों की सनकी आदतों का सबसे सजीव विवरण प्रदान करते हैं। बाहरी लोगों के रूप में, उन्होंने अक्सर उन चीजों के बारे में देखा और लिखा जिनका उल्लेख देसी लेखक बहुत साधारण जानकारी मानकर नहीं करते थे। उदाहरण के लिए लोग जो कपड़े पहनते थे, या जो भोजन रखते थे, उनके बारे में अक्सर दरबारी इतिवृतों में केवल आकस्मिक संदर्भ मिलता

है, लेकिन उपमहाद्वीप के परे से आने वाले आगन्तुक अक्सर इन और अन्य रोजमर्रा की आदतों पर टिप्पणी करते हैं।

यह ध्यान रखना दिलचस्प है कि कभी–कभी यात्रियों ने बेहतर सम्प्रेषण के लिए भारत आने से पहले फारसी सीखने की कोशिश की और फारसी सीखी। हालांकि, अधिकांश यात्री देसी भाषाओं से परिचित नहीं थे, और उन्होंने अक्सर भारतीय गाइड या अनुवादकों को, जिन्हें दुभाष या दुभाषी कहा जाता था, काम पर रखा। किसी भी अन्य 'स्रोतों' की तरह, यात्रियों के वर्त्तान्तों को पढ़ना इतिहासकारों के सामने अपनी स्वयं की चुनौतियाँ पेश करता है। तथ्य यह है कि अधिकांश यात्रा लेखकों के पास स्थानीय संरक्षक नहीं थे, इसका मतलब यह नहीं था कि उनके पास लेखन के उद्देश्य की कमी थी। ना ही इसका मतलब यह था कि वे 'वस्तुनिष्ठ' थे। बहुत बार वे विदेश में अपने किसी स्वामी या मित्र को प्रसन्न करने का प्रयास करते थे। कभी–कभी, उन्होंने तथ्यों के साथ स्वतंत्रता लेकर और एक मनगंढ़त कथा बनाकर एक राजनैतिक मुद्दे को अपने देश में साबित करने की कोशिश की जिससे उन्हें अपनी बात को और प्रभावी ढंग से व्यक्त करने में मदद मिली। इसलिए, इतिहासकारों के रूप में हमें सावधान रहने और इन ग्रंथों की उनके संदर्भों में व्याख्या करने की आवश्यकता है।

यात्रियों का जीवन बहुत अनिश्चित और काफी हद तक असुरक्षित था। कुछ पर्यवेक्षकों का मानना था कि प्रारंभिक आधुनिक समय की शुरूआत तक, यूरोप से भारत के लिए रवाना हुए आधे जहाज वापस नहीं लौटे। भारतीय धरती पर उतरने के बाद भी यात्रियों के लिए आसान नहीं था, उनके यात्रा के साधन भी भिन्न–भिन्न थे। वे पैदल यात्रा करते थे और कभी–कभी पालकी और बैलगाड़ियों का भी इस्तेमाल करते थे। यात्रा परिवहन के साधनों की उपलब्धता, सड़कों की गुणवत्ता और साधन सम्पन्नता पर निर्भर करती थी। डाकुओं के साथ मुठभेड़ कम नहीं थीं। इन मुठभेड़ों ने उनके जीवन को दयनीय बना दिया, क्योंकि एक विदेशी भूमि पर पैसे के बिना जीवित रहना बहुत मुश्किल था। कई बार स्थानीय अधिकारियों ने उनका साजो–सामान जब्त कर लिया। भोजन और आवास उनके लिए चिन्ता का एक निरन्तर कारण था। कभी–कभी वे शिविरों में या सरायों में या कारवाँ सरायों में रहते थे। भोजन हमेशा चिन्ता का विषय था, जिसका कोई आसान समाधान नहीं था। उनका लेखन ज्यादातर अपने यूरोपीय संरक्षकों के प्रति उन्मुख था। शायद ही कभी इसे सीधे भारतीय श्रोताओं के लिए लिखा गया हो।

आइये हम विभिन्न क्षेत्रों से आये कुछ यात्रियों के बारे में सक्षेप में चर्चा करें, जो विभिन्न उद्देश्यों के लिए भारत आए थे। अफानसी निकितिन, एक रूसी पंद्रहवीं शताब्दी के उतरार्ध और सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में घोड़े के व्यापारी के रूप में अपना भाग्य आजमाने के लिए यहाँ आया था। फादर एंटोनियों मोनसेरेट पुर्तमाली जेसुइट थे, जिन्होंने बादशाह अकबर के निमंत्रण पर आगरा का दौरा किया और बादशाह अकबर के ईसाई धर्म में धर्मातरण की बहुत कोशिश की। उनके लेखन में दुर्भाग्य से हिन्दु, मुसलमान और अन्य समुदायों, विशेषकर भीलों के प्रति उनका मिशनरी पूर्वाग्रह झलकता है। विलियम हॉकिन्स एक अंग्रेज व्यापारी थे, जो मुगल दरबार में सम्राट जेम्स प्रथम के राजदूत थे। वह अंग्रेजी व्यापार के लिए रियायतें प्राप्त करने और सूरत में स्थाई फैक्ट्री की अनुमति लेने के लिए उत्सुक थे। वह बादशाह जहाँगीर के लिए घड़ी लाये थे।

हॉकिन्स के बाद आने वाले पीटर मुन्डी उत्तराधिकार के युद्ध के कारण हुई उथल–पुथल के साक्षी थे। उन्होंने चीन और जापान तक की यात्रा की और भारतीय समाज का बहुत समृद्ध

विवरण प्रस्तुत किय। फ्रायर (रोमन कैथोलिक भिक्षु) सेबेस्टियन मैनरिक (1585–1669) पुर्तगाल के ऑगस्टिनियन आर्डर के पादरी थे। उन्होंने पूर्वी तट से बंगाल तक की अपनी यात्रा के बारे में दिलचस्प, कभी–कभी भयानक कहानियों का वर्णन किया, और मानसून की बाढ़ों, मच्छरों, मच्छरों के काटे जाने से बुखार, दुर्गम गाँव, आदि से सामना होने का वर्णन किया। भारत की यात्रा करने वाले और मुगल राजकुमार दारा शिकोह के साथ रहने वाले एक विनिशियन निकोलाओं मनुची ने उत्तराधिकार युद्ध का विस्तृत इतिहास और दरबारी शिष्टाचार का एक सूक्ष्म वृर्तान्त और पक्षपात और रिश्वत की प्रचलित प्रथाओं का विस्तृत विवरण दिया। हम इस भाग का समापन पेरिस के एक चिकित्सक फ्रेकोइस बर्नियर और दर्शन के लिए एक स्वाभाविक आकृष्ट होने वाले व्यक्ति की यात्राओं के साथ करेंगे। प्रारंभ में वह निजी चिकित्सक के रूप में भगोड़े राजकुमार दारा शिकोह के साथ जुड़ गये। सामान्य रूप से भारतीय समाज पर उनके अवलोकन और शासक अभिजात वर्ग के शोषक चरित्र के बारे में उनके विवरण को औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा बड़े पैमाने पर इस्तेमाल किया गया है, जिसे बाद के इतिहासकारों द्वारा अन्य प्रकार के स्रोतों पर काम करने के बाद चुनौती दी गई है और संशोधित भी किया गया है।

2.5 सारांश

संस्कृत और विभिन्न देसी भाषाओं में साहित्यिक परंपराओं का उपरोक्त सारांश प्रारंभिक आधुनिक समय के दौरान समृद्ध साहित्यिक संस्कृति का प्रमाण है। जैसा कि पिछली इकाई में चर्चा की गई थी, आधिकारिक भाषा फारसी फल–फूल रही थी, लेकिन इसके साथ ही हम पाते हैं कि न केवल संस्कृत को बल्कि क्षेत्रीय स्तर पर तत्संबंधी देसी भाषाओं को संरक्षण उपलब्ध कराया गया था। ऐसी विविध साहित्यिक परंपराएं बहु–भाषी समाज की अभिव्यक्ति रहीं हैं। यद्यपि ऊपर केवल एक संक्षिप्त सर्वेक्षण का प्रयास किया गया है, फिर भी हमें इस बात को समझने की आवश्यकता है कि इसमें से प्रत्येक देसी भाषा में व्यापक शोध किये जा रहे हैं (नीचे दी गई संदर्भ ग्रन्थ सूची आपको और अधिक जाँच–पड़ताल करने में मदद करेगी। अध्ययन काल की अवधि के लिए उपलब्ध विभिन्न प्रकार के स्रोतों को उजागर करने के लिए यात्रियों और यात्रा वृत्तांन्तों के एक बहुत व्यापक रेखाचित्र पर भी चर्चा की गई है।

2.6 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 2.1 देखें। प्रारंभिक आधुनिक समय के बहुभाषी लोकाचार की चर्चा की आवश्यकता है।

2) भाग 2.2 देखें। मध्यकाल में भी संस्कृत फलती–फूलती रही, यह इस प्रश्न का मूल है।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 2.3 देखें। यह उम्मीद की जाती है कि आपका उत्तर भारतीय उपमहाद्वीप में विविध साहित्यिक परंपराओं पर प्रकाश डालेगा।

2) उपभाग 2.3.10 देखें। तमिल का इतिहास कहीं अधिक पुराना है और इसने पड़ोसी देसी भाषाओं के विकास को प्रभावित किया है।

3) उपभाग 2.3.1, 2.3.7 और 2.3.4 देखें।

इस इकाई के लिए कुछ उपयोगी अध्ययन सामग्री

Alam, M. & S. Subrahmanyam. 2011. *Writing the Mughal World: Studies on Culture and Poitics*. New York: Columbia University Press.

Busch, Allison. 2011. *Poetry of Kings: The Classical Hindi Literature of Mughal India.* New York: Oxford University Press.

Faruqi, S. R. 2011. *Early Urdu Literary Culture and History*, New Delhi: Oxford University Press.

Fisher, M. H., ed. 2007. *Visions of Mughal India: An Anthology of European Travel Writing*, London: I.B. Tauris.

Kakati, Banikanta, ed. 1953. *Aspects of Early Assamese Literature*, Guwahati: Guwahati University, 1953.

McGregor, R. S. 1984. *Hindi Literature from Its Beginnings to the Nineteenth Century*, Weisbaden: Otto Harrassowitz.

Paniker, K. Ayyappa, ed. 1997-2000. *Medieval Indian Literature: An Anthology*, Vols 1-4, New Delhi: Sahitya Akademi.

Pingree, David. 1994. *Census of the Exact Sciences in Sanskrit*, Series A, Vol. 5. Philadelphia: American Philosophical Society.

Rao, V.N., D. Shulman and S. Subrahmanyam. 1992. *Symbols of Substance: Court and State in Nayak Period Tamilnadu*, Delhi: Oxford University Press.

Sheldon Pollock, ed. 2003. *Literary Cultures in History: Reconstructions from South Asia*, Berkeley: University of California Press.

Truschke, Audrey. 2016. *Culture of Encounters: Sanskrit at the Mughal Court.* New York: Columbia University Press.

Warder, A.K. 1972. *Indian Kavya Literature*, vol. I: Literary Criticism. Delhi: Motilal Banarsidass Publishers Private Limited.